



मसीही विश्वासियों के लिए “इफिसियों” नामक बाइबल-पुस्तक का एक अध्ययन

EPHESION

First Hindi Edition : September-2007

Adapted into Hindi by : **J.P. Pandey**
Assisted by : **R.K. Khullar**

This book is based on the English title "Lessons in EPHESIANS for growing believers" (Tim Mcmanigle) published by the Fellowship Bible Church, 3217, Middle Road, Winchester, VA. (U.S.A.).

Copyright © The Fellowship Bible Church,
Winchester, VA. (U.S.A.).

All rights reserved

Printed in Nepal

विषय सूची

अध्याय	पृष्ठ संख्या
एक	5–16
दो	17–23
तीन	24–31
चार	32–40
पाँच	41–49
छः	50–56
सात	57–62
आठ	63–74
नौ	75–83

इफिसियों

नामक

बाइबल-पुस्तक का एक संक्षिप्त अध्ययन

संत पौलुस ने यह पुस्तक प्रथम शताब्दी के इफिसुस नामक एक प्रसिद्ध नगर की कलीसिया को लिखी थी। वह पहली बार अपनी द्वितीय मिशनरी यात्रा के दौरान इफिसुस गया था। “फिर वे इफिसुस पहुँचे जहाँ उसने उन्हें छोड़ दिया और वह आप आराधनालय में जाकर यहूदियों से तर्क-वितर्क करने लगा। जब लोगों ने उस से कुछ दिनों के लिये और रहने को कहा तो उसने स्वीकार नहीं किया। परन्तु विदा लेते समय उसने यह कहा, ‘यदि परमेश्वर की इच्छा हो तो तुम्हारे पास फिर आऊँगा।’ तब वह इफिसुस से जहाज द्वारा स्वाना हुआ” (प्रेरि0 18:19-21)।

आगे चल कर अपनी तीसरी सुसमाचार-प्रचार यात्रा के दौरान पौलुस पुनः उनके पास गया, और तीन साल तक उनके साथ रहा। इफिसुस में पौलुस को बहुत सतावट सहनी पड़ी। किन्तु कई लोगों ने सुसमाचार पर विश्वास किया, और एक मसीही मण्डली स्थापित हुई। “ऐसा हुआ कि जब अपुल्लोस कुरिन्थुस में था, तो पौलुस ऊपर के प्रदेश से होता हुआ इफिसुस में पहुँचा और, वहाँ पर उसे कुछ चेले मिले... वह आराधनालय में जाकर तीन महीने तक निर्भीकता से बोलता रहा, और परमेश्वर के राज्य के विषय में तर्क-वितर्क करता और उन्हें समझाता रहा। परन्तु जब कुछ लोगों ने कठोर होकर उसकी नहीं मानी और भीड़ के सामने इस पंथ को बुरा-भला कहने लगे, तो वह चेलों को लेकर उनसे अलग हो गया और तरन्नुस की पाठशाला में प्रतिदिन तर्क-वितर्क करता रहा। दो

वर्ष तक ऐसा होता रहा, जिससे कि वे जो एशिया में रहते थे – यहूदी और यूनानी सब ने प्रभु का वचन सुन लिया “ (प्रेरि0 19:1, 8-10)। बाद में, यरूशलेम वापिस आते समय पौलुस ने इफिसुस की कलीसिया के सभी “ प्राचीनों ” को मिलेतुस नामक स्थान में बुलाकर उनसे भेंट किया। उस विशिष्ट भेंट के समय पौलुस ने उन्हें इफिसुस की कलीसिया की विश्वासयोग्यतापूर्वक देखभाल करने के लिए चुनौती दिया, और ऐसा करते समय अपना जीवन-उदाहरण भी प्रस्तुत किया।

“उसने मिलेतुस से इफिसुस को संदेश भेजकर कलीसिया के प्राचीनों को अपने पास बुलवाया। और जब वे उसके पास आए तो उसने उनसे कहा : तुम स्वयं जानते हो कि पहिले दिन से ही जब मैंने एशिया में पैर रखा किस प्रकार मैं तुम्हारे साथ सब समय रहा – अर्थात् किस प्रकार बड़ी दीनता के साथ, आँसू बहा बहा कर और उन परीक्षाओं में भी, जो यहूदियों के षडयंत्र के कारण मुझ पर आ पड़ी थीं, प्रभु की सेवा करता रहा, और कि किस प्रकार तुम्हारे लाभ के लिए कोई भी बात बताने से न झिझका और सब के सामने तथा घर घर जाकर तुम्हें उपदेश देता रहा। मैं यहूदी तथा यूनानी दोनों को ही दृढतापूर्वक साक्षी देता रहा कि परमेश्वर की ओर मन फिराओ और प्रभु यीशु मसीह पर विश्वास करो। अब देखो, मैं आत्मा में बंधा हुआ यरूशलेम को जाता हूँ, और वहाँ न जाने मुझ पर क्या क्या बीतेगा, केवल यह कि पवित्र आत्मा प्रत्येक नगर में मुझ से गम्भीरतापूर्वक गवाही देकर कहता है कि बंधन और क्लेश तेरी प्रतीक्षा में हैं... इसलिए जागते रहो, और स्मरण करो कि मैंने तीन वर्ष तक रात-दिन आँसू बहा बहा कर एक एक को समझाना न

छोड़ा और अब मैं तुम्हें परमेश्वर और उसके अनुग्रह के वचन के हाथ सौंपता हूँ, जो तुम्हारी उन्नति कर सकता है और सब पवित्र किए गए लोगों के साथ मीरास दे सकता है। मैंने किसी के सोने, चांदी या वस्त्रों का लोभ नहीं किया। तुम स्वयं जानते हो कि इन्हीं हाथों ने मेरी और मेरे साथियों की आवश्यकताएं पूरी की हैं। मैंने तुम्हें हर बात से यह दिखाया है कि तुम भी इसी प्रकार कठिन परिश्रम करके निर्बलों को संभालो और प्रभु यीशु के ये वचन स्मरण रखो जो उसने स्वयं कहे : 'लेने से देना धन्य है'। यह कहकर उसने घुटने टेके और सबके साथ प्रार्थना की। तब वे सब फूट-फूट कर रोने लगे और पौलुस के गले लिपट कर उसे बार-बार चूमने लगे। वे विशेषकर उस बात से जो उसने कही थी शोकित थे कि तुम मेरा मुँह फिर न देखोगे, और उन्होंने उसे जहाज तक पहुँचाया" (प्रेरि0 20:17-23, 31-38)।

इसके बाद पौलुस यरूशलेम वापिस गया। वहाँ पहुंचने पर उसे गिरफ्तार कर लिया गया। वहाँ दो साल तक कैसरिया में कैद में रखे जाने के बाद उसे रोम भेज दिया गया था। रोम में अपने कारावास के समय ही पौलुस ने **इफिसियों** की मंडली के नाम यह पत्री लिख कर वहाँ भिजवायी। उसने पवित्र आत्मा की अगुवाई में यह पत्री लिखी। इफिसुस के विश्वासियों के लिए यह परमेश्वर का संदेश था, और ऐसा ही हमारे लिए भी है।

"पौलुस की ओर से जो परमेश्वर की इच्छा से मसीह यीशु का प्रेरित है, इफिसुस निवासी उन पवित्र लोगों को जो मसीह यीशु में विश्वासी हैं" (इफि0 1:1)। पौलुस ने अपने आप को "प्रेरित" क्यों कहा? उत्तर पहले पद में ही स्पष्ट है : वह "परमेश्वर की

इच्छा से "प्रेरित" था। वह प्रभु परमेश्वर का संदेशवाहक होने के लिए चुना गया था, अर्थात् मसीह यीशु के शुभ समाचार (सुसमाचार) को बताने के लिए भेजा गया जन। ध्यान दें कि यह संदेशवाहक, सुसमाचार-प्रचारक या प्रेरित होने का निर्णय पौलुस ने नहीं लिया था। परमेश्वर ने उसे चुन कर भेजा था। **प्रेरितों के काम** की पुस्तक के नौवें अध्याय की घटनाओं पर पुनः विचार कीजिए, जबकि प्रभु परमेश्वर ने दमिश्क के हनन्याह नामक व्यक्ति को पौलुस के पास भेजा : "परन्तु प्रभु ने उस से कहा, चला जा, क्योंकि वह तो गैरयहूदियों, राजाओं और इस्राएलियों के सामने मेरा नाम प्रकट करने के लिए मेरा चुना हुआ पात्र है" (प्रेरि0 9:15)।

इफिसियों के पहले अध्याय के पहले पद में पौलुस यह भी स्पष्ट कर देता है कि उसने यह पुस्तक किन्हें सम्बोधित करके लिखी है : "इफिसुस के निवासी **पवित्र लोगों** को"। इफिसुस के इन पवित्र लोगों (संतों) को पौलुस ने "विश्वासी" अर्थात् विश्वासयोग्य, निष्ठावान, वफादार, सुदृढ़ या स्वामीभक्त कहा है। इसका मतलब यह नहीं कि प्रत्येक मसीही (विश्वासी) ऐसा हो गया है, बल्कि पौलुस का भावार्थ यह है कि मसीह यीशु के विश्वासयोग्य, अटल, विश्वसनीय एवं सुस्थिर कार्य के द्वारा पिता परमेश्वर की दृष्टि में प्रत्येक विश्वासी की आध्यात्मिक तौर पर "मसीह में" ऐसी ही स्थापना हो चुकी है और **उसी के द्वारा** 'विश्वासी' बने रहेंगे। पौलुस ने अपनी अन्य पत्रियों में भी विश्वासियों को "मसीह में" पाए जाने वाले लोग कह कर सम्बोधित किया है। प्रारम्भ में हम आदम में थे, लेकिन जिस क्षण हम मसीह पर विश्वास किए उसी समय पवित्र आत्मा ने हमें मसीह में रख (बपतिस्मा) दिया। अब पिता परमेश्वर

हमें वैसे ही ग्रहण करता है जैसे **मसीह** को। पिता परमेश्वर द्वारा हमें ग्रहण करना इस बात पर निर्भर नहीं करता कि हम कौन हैं या हमने क्या किया है। बल्कि हमारी ग्रहणयोग्यता इस बात पर आधारित है कि हमने **किस पर** विश्वास किया है।

“हमारे पिता परमेश्वर और प्रभु यीशु मसीह की ओर से तुम्हें अनुग्रह और शांति मिले” (इफि0 1:2)। अनुग्रह और शांति कहाँ से प्राप्त होती है? मसीह द्वारा संपन्न किए गये उद्धार कार्य के आधार पर पिता **परमेश्वर की ओर** से। पिता परमेश्वर हमें समस्त अनुग्रह एवं समस्त शांति प्रदान कर चुका है, लेकिन हम हर समय इसका अनुभव नहीं करते। जैसे-जैसे हम परमेश्वर के ज्ञान में बढ़ते जाते हैं और यीशु मसीह में उपलब्ध आध्यात्मिक आशिषों को जानते-पहचानते हैं, वैसे-वैसे अनुग्रह एवं शांति के जीवन अनुभव एवं स्वभाव में विकसित होते जाते हैं।

“हमारे प्रभु यीशु मसीह का पिता परमेश्वर धन्य हो, जिसने हमें मसीह में स्वर्गीय स्थानों में सब प्रकार की आत्मिक आशिषों से आशीषित किया है” (इफि0 1:3)। पौलुस, पिता परमेश्वर को “धन्य” कहता है, उसकी ‘स्तुति-प्रशंसा’ करता है। क्यों? पवित्र आत्मा हमारे लिए आवश्यक सारी आध्यात्मिक आशिषों को प्रदान कर चुका है। पाप के कारण देह पुरानी होकर मरती है, और प्राण व आत्मा अनन्तकाल के लिए परमेश्वर से अलग होकर नरक में जाते हैं। चूँकि हमारे बदले मसीह यीशु मरा (बलिदान हुआ) और उस पर हम विश्वास करते हैं, इसलिए अब पवित्र आत्मा पाप के दोष-दण्ड से तथा पाप के अधिकार से हमें मुक्त करने हेतु सारी

आवश्यक आशीषें प्रदान कर सकता है। यह सब आशीषें पवित्र आत्मा द्वारा प्रदान की जाती हैं, और यह आध्यात्मिक आशीषें हैं, न कि रुपया-पैसा, गाय-भैंस, मोटरकार जैसी भौतिक आशीषें (गला0 5:22-23)।

अधिकतर लोग पार्थिव, अस्थायी वस्तुओं के बारे में सोचते रहते हैं और उन्हीं को पाने के अभिलाषी होते हैं। लेकिन वास्तविकता यह है कि चाहे हम धनी हों या गरीब, पार्थिव चीजें थोड़े समय तक ही हमारी होंगी। इसीलिए हमें पवित्र आत्मा द्वारा दी गई उन आत्मिक आशीषों पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए जो अनन्तकाल तक हमारी रहेंगी। तीसरे पद के अनुसार हमें यह आत्मिक आशीषें "मसीह में" प्रदान की गई हैं। यदि यीशु मसीह हमारे बदले मर कर पुनः जीवित नहीं हुआ होता तो यह आध्यात्मिक आशीषें हमें प्राप्त नहीं होतीं। आदम की संतान (अर्थात् उसमें) होने के कारण हमें उससे पाप एवं मृत्यु की विरासत मिली थी। अब हम **मसीह में** हैं, अतएव पवित्र आत्मा द्वारा हमें (नया) जीवन प्रदान किया गया है, और अब मसीह तथा उसमें प्राप्त सारी आत्मिक आशीषें हमारे लिए उपलब्ध हैं। इफिसियों के पहले अध्याय के आगे के कुछेक पदों में ऐसी अनेक आत्मिक आशीषों का स्पष्ट उल्लेख है।

चुने हुए जन :- "उसने हमें जगत की उत्पत्ति से पूर्व मसीह में चुन लिया कि हम उसके समक्ष प्रेम में पवित्र और निर्दोष हों" (इफि0 1:4)। पौलुस द्वारा वर्णित पहली आत्मिक आशीष पर ध्यान दें : अन्य किसी चीज की रचना करने से पूर्व मसीह में प्रभु परमेश्वर ने हमें चुन लिया था। चूँकि परमेश्वर सर्वज्ञानी है, इसलिए आदिकाल

से ही वह यह जानता था कि उसके द्वारा रचा जाने वाला मनुष्य पाप करेगा और मनुष्य के पाप के बदले मरने हेतु **मसीह** को भेजना होगा। अतः उसने अपने इस पूर्व ज्ञान के अनुसार सृष्टि-रचना से पहले ही उद्धार पाने वालों को चुन लिया। उसने हमें उसके समक्ष पवित्र एवं निष्कलंक होने हेतु "मसीह में" चुन लिया। यदि हम पवित्र एवं निष्कलंक नहीं हैं तो क्या परमेश्वर हमें ग्रहण करेगा? नहीं। इसीलिए सृष्टि-रचना से पूर्व पिता परमेश्वर ने हमें "मसीह में" स्थापित कर दिया था, ताकि हम मसीह द्वारा परमेश्वर के समक्ष पवित्र एवं निष्कलंक हो सकें और वह हमें ग्रहण कर सके। परमेश्वर की दृष्टि में (सैद्धान्तिक तौर पर) निष्कलंकता एवं पवित्रता रूपी यह आत्मिक आशिष पवित्र आत्मा हमें प्रदान कर चुका है।

लेपालक पुत्र :- "उसने हमें अपनी इच्छा के भले अभिप्राय के अनुसार पहिले से ही अपने लिए यीशु मसीह के द्वारा लेपालक पुत्र होने के लिए ठहराया" (इफि0 1:5)। अगली आशिष परमेश्वर के घराने में (वयस्क) सन्तान की भाँति "दत्तक" ग्रहण किए जाने की है, और ऐसे गोद लिए गये लोग दंडित किए जाने के भय में नहीं जीते यानि ईश्वरीय न्याय-दंड से मुक्ति पाए लोग। इतना ही नहीं, बल्कि व्यस्क संतान की भाँति ऐसे लोग "मसीह में" प्राप्त अपनी विरासत के फौरन दावेदार (लाभार्थी, अधिकारी) हो जाते हैं (गला0 4:1-7)। परमेश्वर की (दत्तक) संतान हो जाने के फलस्वरूप हम मसीह के साथ सहउत्तराधिकारी हो जाते हैं और वह तथा उसमें उपलब्ध समस्त (आध्यात्मिक) आशिषें हमारी हो जाती हैं (रोमि0 8:17)।

स्वीकार्यता :- "उसके उस अनुग्रह की महिमा की स्तुति हो जिसे उसने हमें उस अति प्रिय में संतमेंत दिया" (इफि0 1:6)। पौलुस ने आगे जिस आध्यात्मिक आशिष का जिक्र किया है वह यह है कि प्रभु यीशु पर विश्वास करने वाला जन पिता परमेश्वर के समक्ष स्वीकार्य है। इससे पूर्व, आदम में पापी होने के कारण, हम परमेश्वर के समक्ष अस्वीकार्य (उसके विरोधी अर्थात् उसके तिरस्कृत जन) थे। अब प्रभु यीशु मसीह (उस अति प्रिय) के माध्यम से परमेश्वर के समक्ष पूर्णरूपेण स्वीकार्य हैं। अपने आप में हम परमेश्वर के समक्ष ग्रहणयोग्य नहीं हैं, लेकिन मसीह यीशु ने अपने धार्मिकता रूपी पहिनावे (आवरण) के द्वारा परमेश्वर के समक्ष हमें ग्रहणयोग्य बना दिया है।

विमोचन एवं क्षमा-दान :- "हमें, उसमें, उसके लहू के द्वारा छुटकारा, अर्थात् हमारे अपराधों की क्षमा, उसके अनुग्रह के धन के अनुसार मिली है" (इफि0 1:7)। पौलुस के अनुसार अगली आत्मिक आशिष यह है कि मसीह के लहू के द्वारा हम खरीद लिए गये हैं (हमारा दंड-मूल्य चुकता किया गया) और हमारे पाप क्षमा कर दिए गये हैं। यह सातवाँ पद इस सच्चाई को सुस्पष्ट कर देता है कि 'हमारे बदले बहाए गये यीशु मसीह के लहू' के द्वारा हमें छुड़ाया गया है और क्षमा प्रदान की गई है। "उसके अनुग्रह के धन के अनुसार" का भावार्थ यह है कि परमेश्वर ने अपने असीम अनुग्रह के अनुसार हमें छुटकारा एवं क्षमा प्रदान किया है। परम प्रधान परमेश्वर के अनुग्रह का कोई अन्त (सीमा) नहीं है। उसका अनुग्रह अनन्त है और वह अनुग्रहकारी (अनुग्रह करने में धनी) परमेश्वर है। तो क्या कभी पाप की मात्रा इतनी अधिक हो जाएगी कि ईश्वरीय अनुग्रह

अपर्याप्त हो जाएगा (कम पड़ जाएगा)? क्या कभी हम इतना अधिक पाप कर सकते हैं कि परमेश्वर को यह कहना पड़े कि 'अब मेरे पास और अधिक अनुग्रह नहीं है तथा मैं तुम्हें क्षमा-दान नहीं दे सकता'। नहीं। ऐसा नहीं है। ईश्वरीय अनुग्रह की कोई सीमा नहीं है। ईश्वरीय अनुग्रह हमारे पाप से बहुत अधिक महान है। हमारा पाप ईश्वरीय क्षमा-क्षमता को क्षीण नहीं कर सकता।

भावी ईश्वरीय योजना की समझ :- "जिसे उसने समस्त ज्ञान और समझ से हमें बहुतायत से दिया है। उसने हमें अपनी इच्छा का रहस्य अपने भले अभिप्राय के अनुसार जिसे उसने स्वयं निर्धारित किया था, बताया – ऐसे प्रबन्ध के उद्देश्य से कि समयों के पूरा होने पर वह सब कुछ जो स्वर्ग और पृथ्वी पर है, मसीह में एकत्रित करे" (इफि० १:८-१०)। यहाँ पौलुस एक अन्य आशीष की ओर ध्यान आकर्षित करता है : अर्थात् हमें यह समझ एवं प्रकाशना प्रदान की गई है कि परम प्रधान परमेश्वर क्या कर चुका है, क्या कर रहा है और क्या करेगा। उद्धार पाने से पूर्व हम सब (आत्मिक) अंधकार में जी रहे थे। अब हमें पवित्र आत्मा मिला है जो परमेश्वर के वचन से सत्य की समझ व प्रकाशना प्रदान करता है। अब हमें अनन्त (शाश्वत) काल के बारे में ज्ञान मिला है कि मृत्यु के बाद हमारा क्या होगा। अब हम यह समझते हैं कि मसीह यीशु ही सारे इतिहास का केन्द्र-बिन्दु है, और एक दिन वह पुनः वापिस आएगा और अपने लोगों को सदा काल तक साथ रखने के लिए ले जाएगा। अब हम यह भी जानते हैं कि वर्तमान समय में शैतान इस संसार का मालिक बन बैठा है, किन्तु वह दिन भी आने वाला है जबकि वह सदा-सर्वदा के लिए नरक में भेजा जाएगा। यह संसार एक दिन नष्ट किया

जाएगा, और तत्पश्चात् एक नई सृष्टि होगी जिस पर प्रभु यीशु राज्य करेगा। चूँकि पवित्र आत्मा ने यह सब प्रकट किया है इसलिए हमें यह ज्ञान प्राप्त है (प0कुरि0 2:7-12)।

प्रभु यीशु के साथ उत्तराधिकारी :- "उसी में जो अपनी इच्छा की सुमति के अनुसार सब कुछ करता है, हमने भी उसके अभिप्राय के अनुसार, पहिले से ठहराए जाकर उत्तराधिकार प्राप्त किया है" (इफि0 1:11)। एक अन्य आशीष यह है कि हमें मसीह में एक उत्तराधिकार (मीरास) प्राप्त है। क्या किसी निर्धन व्यक्ति के मरने पर उसके बच्चों के लिए कोई धन-सम्पत्ति मिलती है? नहीं। किसी निर्धन द्वारा धन-सम्पत्ति छोड़ने का कोई सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि उसके पास धन तो होता ही नहीं। पुराने आदम में हमारी यही दशा थी – आत्मिक तौर पर निर्धन। हमारे लिए सिर्फ मृत्यु एवं नरक रूपी विरासत थी। परन्तु अब पिता परमेश्वर ने हमें अपनी संतान का दर्जा दे दिया है, और राजाओं के राजा की संतान होने के कारण हमें उसकी ओर से अद्भुत उत्तराधिकार (मीरास) मिला है : अनन्त जीवन, ईश्वरीय प्रेम, परमेश्वर की स्वीकार्यता और उसके साथ सुसंगति के भागीदार। "कि हम, जिन्होंने मसीह पर पहिले से आशा रखी थी, उसकी महिमा की स्तुति के कारण हों" (इफि0 1:12)। हमारा चुना जाना, पवित्र किया जाना, स्वीकार किया जाना, लेपालक पुत्र बनाया जाना, छुटकारा पाना, क्षमा पाना, ईश्वरीय-योजना की ज्ञान-समझ पाना और मसीह में मीरास प्रदान किया जाना हमारी किसी योग्यता अथवा सुकर्म के कारण नहीं है। यह तो सिर्फ ईश्वरीय अनुग्रह एवं प्रेम की देन है। मसीह के द्वारा पूर्ण किए गये अद्भुत उद्धार-कार्य की समझ में प्रगति के परिणाम स्वरूप हमारे जीवन से प्रभु परमेश्वर की स्तुति-प्रशंसा व महिमा होगी।

पवित्र आत्मा की छाप :- "उसी में तुम पर भी, जब तुमने सत्य का वचन सुना जो तुम्हारे उद्धार का सुसमाचार है – और जिस पर तुमने विश्वास किया – प्रतिज्ञा किए हुए पवित्र आत्मा की छाप लगी" (इफि0 1:13)। अब पौलुस एक अन्य महत्वपूर्ण आशिष का जिक्र करता है – अर्थात् परमेश्वर ने हमें पवित्र आत्मा प्रदान किया है। मसीह पर आशा-भरोसा (विश्वास) करते वक्त ही प्रभु परमेश्वर ने हमें पवित्र आत्मा प्रदान किया। प्रायः हम अपनी खास चीजों पर अपना पहचान-चिन्ह (नाम या छाप) लगा देते हैं ताकि हम यह जान-समझ सकें कि वह खास चीज हमारी है, किसी दूसरे की नहीं। पिता परमेश्वर ने हमें अपने पुत्र के लहू से मोल लिया है और पवित्र आत्मा प्रदान किया है। पवित्र आत्मा ने हम पर मसीह के जीवन की "छाप" (पहचान-चिन्ह) लगा दिया है। अब शैतान हमें अपनी संतान या अपना शागिर्द नहीं कह सकता। क्यों? क्योंकि हम पर पवित्र आत्मा की छाप लग चुकी है, जो कि इस बात का प्रमाण है कि हम प्रभु परमेश्वर के हैं, अब वही हमारा मालिक है।

छुटकारे का बयाना :- "वह हमारे उत्तराधिकार के बयाने के रूप में इस उद्देश्य से दिया गया है कि परमेश्वर के मोल लिए हुआओं का छुटकारा हो, जिस से परमेश्वर की महिमा की स्तुति हो" (इफि0 1:14)। पवित्र आत्मा सिर्फ इस बात की "छाप" ही नहीं है कि हम परमेश्वर के हैं बल्कि वह हमारे उत्तराधिकार की सुनिश्चयता की "गारंटी" (बयाना) भी है। जैसा कि हम जानते हैं, कभी-कभी किसी कीमती चीज को खरीदने के लिए बात पक्की हो जाने पर कुछ पैसा बयाने के तौर पर देना पड़ता है। यद्यपि प्रभु यीशु मसीह हमारे पाप के दण्ड-मूल्य को पूर्णरूपेण चुकता कर चुका है, किन्तु हम अभी भी

अपनी पतित देह में इस संसार में रह रहे हैं, और अपने **उत्तराधिकार** को अभी पूर्णतः नहीं पाए हैं। पवित्र आत्मा का दिया जाना परमेश्वर की ओर से इस सच्चाई का प्रमाण है कि जब हम अपनी पार्थिव देह को छोड़कर स्वर्ग में उठा लिए जायेंगे तब अपने उत्तराधिकार को पूर्णरूपेण प्राप्त करेंगे। बेशक, परमेश्वर की दृष्टि में (सैद्धान्तिक तौर पर) हमें हमारा आत्मिक **उत्तराधिकार** पूर्णरूपेण मिल चुका है; लेकिन जब तक हम अपनी इस पतित देह में पृथ्वी पर हैं, तब तक अपने उत्तराधिकार का पूर्ण अनुभव नहीं कर पाते। जब इहलौकिक जीवन से मुक्त होकर प्रभु के साथ होंगे, तब अपनी मीरास का पूर्ण अनुभव करना आरम्भ करेंगे। तब हम सारी महिमा, आदर, स्तुति, प्रशंसा पिता परमेश्वर को ही देंगे, क्योंकि तब हम वास्तव में यह जानने-समझने लगेंगे कि परमेश्वर हमारे सोच-विचार से कितना अधिक महान, सर्वशक्तिमान, दयावान एवं प्रेमी परमेश्वर है।

“इस कारण मैं भी तुम्हारे उस विश्वास का सुसमाचार सुनकर जो प्रभु यीशु में है और तुम्हारा प्रेम जो सब पवित्र लोगों के प्रति है, तुम्हारे लिए निरन्तर धन्यवाद देता हूँ और अपनी प्रार्थनाओं में तुम्हें स्मरण किया करता हूँ” (इफि0 1:15-16)। प्रभु पर इफिसियों के विश्वास के बारे में, तथा दूसरों के प्रति उनके प्रेम के बारे में, पौलुस सुन चुका था। उनके बदले मसीह की मृत्यु रूपी सच्चाई पर विश्वास के द्वारा इफिसुस की मंडली के लोग परमेश्वर की संतान हो गए थे। परमेश्वर की संतानों हेतु सारी ईश्वरीय प्रतिज्ञाओं पर वे आशा-भरोसा (विश्वास) करने लगे थे। वे ‘मसीह में’ अपनी स्थापना एवं आशीषों के बारे में सीखते हुए तथा पवित्र आत्मा पर आश्रित जीवन बिताने की दिशा में जैसे-जैसे आगे बढ़े, वैसे-वैसे उनके जीवन-आचरण से दूसरों के प्रति परमेश्वर का प्रेम प्रदर्शित होता गया। इफिसुस के विश्वासियों का दूसरों के प्रति यह प्रेमपूर्ण व्यवहार ईश्वरीय प्रेम पर आधारित था, जो कि मानुषिक प्रेम से भिन्न प्रेम है। परमेश्वर का प्रेम, प्रेम के बदले प्रेम पाए बगैर भी, प्रेम करता रहता है। ईश्वरीय प्रेम अपने दुश्मनों से भी प्रेम करता है। चूँकि इफिसुस के विश्वासियों के जीवन के द्वारा पवित्र आत्मा ईश्वरीय प्रेम प्रकट कर रहा था, इसीलिए उनमें ऐसा अद्भुत प्रेम सक्रिय था। वे स्वयं अपनी शक्ति, भक्ति या युक्ति से ऐसा प्रेम पैदा नहीं कर सकते थे (कुलु0 1:4; रोमि0 1:8; प0 कुरि0 13:4-7; दू0 कुरि0 12:15; मत्ती 5:44)।

“हमारे प्रभु यीशु मसीह का परमेश्वर, जो महिमा का पिता है, तुम्हें अपनी पूर्ण पहचान में ज्ञान और प्रकाशन की आत्मा दे” (इफि0 1:17)। हाँ, इफिसुस के विश्वासी परमेश्वर पर भरोसा रखते थे तथा दूसरों के प्रति प्रेम रखते थे, लेकिन पौलुस ने उनके लिए यह प्रार्थना किया कि परमेश्वर उन पर स्वयं को और अधिक प्रकाशित (प्रकट) करे जिससे कि वे परमेश्वर के ज्ञान की गहराई में बढ़ते जाएं। परमेश्वर की संतान होने के कारण हमारी यह सबसे बड़ी आवश्यकता है। “कलीसिया के समक्ष सदैव सबसे प्रमुख प्रश्न (तथ्य, विषय) परम प्रधान परमेश्वर ही है। कोई भी इंसान क्या कहता है अथवा क्या करता है, इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह होती है कि वह अपनी अन्तरात्मा में परमेश्वर की कैसी समझ रखता है... परमेश्वर के बारे में कलीसियाई विचार कलीसिया की पहचान दर्शाते हैं। परमेश्वर के बारे में कलीसिया द्वारा दी जाने वाली (या नहीं दी जाने वाली) शिक्षा ही प्रमुख कलीसियाई संदेश होता है... प्रभु परमेश्वर के बारे में त्रुटिपूर्ण विचार अनेक प्रकार की गलत शिक्षा एवं गलत आचरण को बढ़ावा देते हैं। परमेश्वर के प्रति सही सोच एवं विश्वास रखने वाला व्यक्ति हजारों समस्याओं में राहत प्राप्त करता है, क्योंकि ऐसा व्यक्ति यह समझने लगता है कि यह समस्याएं परिस्थितिजनित हैं, अतएव उस पर स्थायी कब्जा नहीं कर सकतीं” (लेखक अज्ञात)।

हमें और अधिक विश्वास, प्रेम एवं सेवा की नहीं, बल्कि परमेश्वर के और अधिक ज्ञान की आवश्यकता है। जितना ज्यादा उसे जाने-पहचानेंगे, उतना ही अधिक उस पर भरोसा करेंगे, उससे प्रेम करेंगे और उसकी सेवा करेंगे। उद्धार पाने पर पिता परमेश्वर ने

हमें अपनी वयस्क संतान होने का हक प्रदान किया, लेकिन अक्सर हम उसकी वयस्क संतान जैसा व्यवहार करते नहीं दिखते। प्रायः हम छोटे बच्चों जैसा कार्य-व्यवहार करते दिखते हैं। परमेश्वर के समुचित ज्ञान का अभाव ही इसका कारण है। क्या आप अपने छोटे बच्चों से वयस्क लोगों की तरह व्यवहार करने की उम्मीद रखते हैं? नहीं। वयस्क होने से पूर्व उन्हें अपने बचपन के कई वर्ष सीखने एवं विकसित होने में व्यतीत करने पड़ते हैं। परमेश्वर की वयस्क संतान की तरह कार्य-व्यवहार करने से पूर्व हमें भी परमेश्वर के ज्ञान-समझ में विकसित होना जरूरी है। पवित्र आत्मा की प्रमुख भूमिका हमारे जीवन में परमेश्वर के ज्ञान को प्रकाशित करना है। (पवित्र आत्मा बगैर) हम अपने आप परमेश्वर के बारे में नहीं सीख सकते, हाँ बाइबिल पढ़ने के द्वारा भी। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पवित्र बाइबिल पवित्र आत्मा की अगुवाई में लिखी गई है, अतः इसे आत्मिक तौर पर ही समझा जा सकता है। केवल 'सत्य का आत्मा' ही हमें परमेश्वर का ज्ञान प्रदान कर सकता है। परमेश्वर के वचन को समझने के लिए हमें पवित्र आत्मा पर आश्रित होना अनिवार्य है। परमेश्वर के वचन को **वही** हमारी अन्तरात्मा में सिखाता-समझाता है तथा परमेश्वर के बारे में सत्य को हम पर और अधिक प्रकट करता जाता है (प0 कुरि0 2: 9-12)।

“मैं पिता से विनती करूंगा, और वह तुम्हें एक और सहायक देगा कि वह सदा तुम्हारे साथ रहे, अर्थात् सत्य का आत्मा, जिसे संसार ग्रहण नहीं कर सकता क्योंकि वह उसे न देखता है और न जानता है, परन्तु तुम उसे जानते हो, क्योंकि वह तुम्हारे साथ रहता है, और तुम में होगा... परन्तु सहायक, अर्थात् पवित्र आत्मा जिसे

पिता मेरे नाम में भेजेगा, वह तुम्हें सब बातें सिखाएगा, और सब कुछ जो मैंने तुम से कहा है, तुम्हें स्मरण कराएगा” (यूह0 14:16,17,26)। “मुझे तुमसे और भी बहुत-सी बातें कहनी हैं, परन्तु तुम अभी उन्हें सहन नहीं कर सकते। परन्तु जब वह, अर्थात् सत्य का आत्मा आएगा, तो वह तुम्हें सब सत्य का मार्ग बताएगा, क्योंकि वह अपनी ओर से कुछ नहीं कहेगा, परन्तु जो कुछ सुनेगा, वही कहेगा, और आने वाली बातों को तुम पर प्रकट करेगा। वह मेरी महिमा करेगा, क्योंकि वह मेरी बातों को लेकर तुम पर प्रकट करेगा” (यूह0 16:12-14)। परमेश्वर के वचन रूपी सत्य में हमारी अगुवाई एवं मार्गदर्शन करने के लिए पवित्र आत्मा हमारे जीवन में भेजा गया है। पवित्र आत्मा को परमेश्वर ने जिस कार्य व उद्देश्य को पूरा करने के लिए भेजा है उसके लिए हमें पवित्र आत्मा पर ही आश्रित रहना है।

“मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे मन की आँखें ज्योतिर्मय हों, जिस से तुम जान सको कि उसकी बुलाहट की आशा क्या है, और पवित्र लोगों में उसके उत्तराधिकार की महिमा का धन क्या है” (इफि0 1:18)। पौलुस की यह प्रार्थना थी कि परमेश्वर की बुलाहट को जानने-समझने हेतु उनके मन की आँखें खोल दी जायं। स्मरण रहे कि परमेश्वर की बुलाहट प्रथमतः परमेश्वर की ओर होती है (प0 कुरि0 1:9; मत्ती 4:18-20; मर0 3:13-14; मर0 6:7)। मसीह यीशु ने अपने शिष्यों को उसके पीछे हो लेने के लिए बुलाया। उसी प्रकार परमेश्वर हमें उसका (परमेश्वर का) अनुसरण करने की बुलाहट देता है और तत्पश्चात् हमारे जीवन में ‘अपने पुत्र के स्वरूप में’ ढालने का महान कार्य शुरू करता है। इसके बाद ही अपने उद्देश्य-योजना के अनुसार हमसे सेवा-कार्य लेता है। हमें मसीह

का जीवन प्रदान किया गया है। पवित्र आत्मा हममें मसीह का जीवन प्रकट करना चाहता है। वह हममें मसीह के जीवन का पुनरुत्पादन (निर्माण) करता है। अन्ततः वह हमारे दैनिक जीवन के द्वारा मसीह के जीवन (साक्षी) को प्रकट करता है। इतना ही नहीं, परमेश्वर ने हमें अनन्त जीवन के लिए बुलाया है। अपने उद्धार के समय प्रभु यीशु में हमें इस अनन्त जीवन की निश्चयता मिली। एक दिन सदा-सर्वदा तक अपने साथ रखने के लिए वह हमें अपने पास (स्वर्ग) ले जाएगा।

पौलुस ने यह प्रार्थना भी किया कि "पवित्र लोगों में **उसके** उत्तराधिकार की महिमा का धन" पहचानने के लिए उनकी आँखें खुल जाएँ। यह पद मसीह में हमारे उत्तराधिकार के बजाय विश्वासियों में परमेश्वर के 'उत्तराधिकार की महिमा' के बारे में है। कितनी अद्भुत बात है कि प्रभु परमेश्वर अपने लोगों को अपनी एक महान सम्पदा मानता है (व्यव0 32:9-12)।

"उसकी सामर्थ्य हम विश्वास करने वालों के प्रति कितनी महान् है। यह सब उसकी उस शक्ति के कार्य के अनुसार है, जिसे उसने मसीह में पूरा किया जब उसने उसे मरे हुएों में से जिलाकर अपनी दाहिनी ओर स्वर्गीय स्थानों में... बैठाया" (इफि0 1:19-20)। अपनी इस प्रार्थना के अन्त में पौलुस (इफिसुस के) विश्वासियों के लिए यह प्रार्थना करता है कि परमेश्वर अपनी महान शक्ति को उनके जीवन में प्रकट करे, वह शक्ति जिसे पवित्र आत्मा विश्वासियों के जीवन में तथा विश्वासियों के जीवन के द्वारा प्रकट करना चाहता है (कुलु0 1:11)। उद्धार और अनन्त जीवन जैसी जिन बातों पर हम आशा रखते हैं वह अविश्वासियों के लिए मूर्खता प्रतीत होती हैं,

परन्तु विश्वासियों के लिए (यह अद्भुत सच्चाईयाँ) मूर्खता नहीं हैं। हमारे बदले मसीह यीशु के मरने के बाद उसे गाड़ (दफन कर) दिया गया, तत्पश्चात् परमेश्वर ने उसे पुनः जीवित कर दिया और उसका स्वर्गारोहण हो गया। चूँकि यह सब यीशु मसीह के साथ हुआ, और अब हम "उस में" हैं; इसलिए हमें पूरा भरोसा है कि पिता परमेश्वर अपने वचन के प्रत्येक वायदे को अवश्य पूर्ण करेगा। हमें निरन्तर पवित्र आत्मा पर भरोसा रखते हुए जीवन व्यतीत करना है; और उसी पर आश्रित रहना है जिससे कि परमेश्वर की वह महान शक्ति हमारे जीवन में प्रकट हो जो हम में तथा हमारे लिए कार्य करती है। जितना अधिक हम परमेश्वर के ज्ञान व समझ में बढ़ते जाते हैं, उतना ही अधिक उस पर आशा-भरोसा रखना अर्थात् उस पर आश्रित रहना सीखते हैं।

"सब प्रकार की प्रधानता, अधिकार, सामर्थ्य और प्रभुता के, तथा प्रत्येक नाम के ऊपर, जो न केवल इस युग में, परन्तु आने वाले युग में भी लिया जाएगा, बैठाया" (इफि0 1:21)। यहाँ मसीह यीशु के उस उच्च एवं महिमामन्वित पदाधिकार को दर्शाया गया है, जो मृतकों में से पुनः जीवित हो उठने तथा स्वर्गारोहण के बाद उसे प्रदान किया गया (फिलि0 2:9-11)। मसीह यीशु को सदा-सर्वदा के लिए समस्त स्वर्गदूतों, शैतान एवं उसकी दुष्टात्माओं तथा सर्वत्र सब लोगों के ऊपर महिमामन्वित किया गया है। मसीह को परमेश्वर द्वारा जो महान एवं महिमावान स्थान (पदाधिकार) प्रदान किया गया है उस अद्भुत एवं आशीषित अवस्था को जानना-समझना बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि बाइबैल यह बताती है कि विश्वासीजन 'उसके साथ बैठाया गया' है। पहला कुरिन्थियों के पहले अध्याय के तीसवें

पद के अनुसार "उसी के कारण" हम "मसीह यीशु में हैं"। प्रभु परमेश्वर ने हमें मसीह में स्थापित कर दिया है। अब हम "मसीह में" (पाए जाते) हैं। जब मसीह क्रूस पर मरा तब हम (परमेश्वर की दृष्टि में) उसके साथ क्रूस पर मरे। जब वह कब्र में दफनाया गया तब (परमेश्वर की दृष्टि में) हम भी उसके साथ दफनाए गए। जब वह पिता की दाहिनी ओर विराजमान हुआ, तब भी (परमेश्वर की दृष्टि में) हम उसमें (पाए जाते) हैं।

"उसने सब कुछ उसके पैरों तले कर दिया और उसे सब वस्तुओं पर शिरोमणि ठहराकर कलीसिया को दे दिया, जो उसकी देह है, और उसकी परिपूर्णता है जो सब में सब कुछ पूर्ण करता है" (इफि0 1:22-23)। कलीसिया **मसीह** की **देह** है; और **वही** कलीसिया का सिर है। इसका मतलब यह है उसकी कलीसिया पर केवल उसी का पूर्ण अधिकार है। वह हम सब की परिपूर्णता है; और पवित्र आत्मा **उसी** के जीवन से हम सबको भरता (भरपूर करता) है।

पिछले पाठ में विश्वासियों को पौलुस ने यह दर्शाया कि "मसीह में" उन्हें कौन सी आत्मिक आशिषें प्रदान की गई हैं। अब समस्त आशिषों में परमेश्वर के अनुग्रह की महानता (महिमा) दर्शाने हेतु पौलुस उन्हें यह याद दिलाता है कि 'आदम में' उनकी क्या दशा थी। इफिसियों की पुस्तक के दूसरे अध्याय के पहले पद पर ध्यान दें : "तुम तो उन अपराधों और पापों के कारण मरे हुए थे"।

उद्धार पाने से पूर्व, हम परमेश्वर की दृष्टि में (उसके प्रति) मृतक तथा उससे अलगाव की अवस्था में थे। इस संसार में हमने 'आदम में' जन्म लिया। अर्थात् परमेश्वर से अलगाव की अवस्था में तथा अनन्तकाल तक के लिए नरक के रास्ते पर। इस संदर्भ में रोमियों 5:12 तथा 6:23 की ओर ध्यान देना भी सहायक होगा, जहाँ यह बताया गया है कि एक मनुष्य (आदम) के पाप के कारण हम सब पापी अवस्था में पैदा हुए हैं और "पाप की मजदूरी मृत्यु है"। हाँ, हम पापी अवस्था में पैदा हुए और पाप के अधिकार-सत्ता के अधीन जी रहे थे। बेशक हमारी भौतिक देह जिन्दा थी परन्तु हम आत्मिक तौर पर मृतक थे, यानि परमेश्वर से पृथक्ता की अवस्था और नरक के रास्ते पर। आदि में प्रभु परमेश्वर ने मनुष्य को पाप-विहीन अवस्था में रचा था। लेकिन आदम और हव्वा के पाप करने पर वह दोनों तथा उनके सारे वंशज पापी हो गए। इस प्रकार मनुष्य जाति परमेश्वर से अलगाव की अवस्था में हो गयी – आत्मिक तौर पर उसके प्रति मृतक।

“जिनमें तुम पहिले इस संसार की रीति और आकाश में शासन करने वाले अधिकारी अर्थात् उस आत्मा के अनुसार चलते थे जो अब भी आज्ञा न मानने वालों में क्रियाशील है” (इफि0 2:2)। यहाँ मृत्यु के अधिकार-सत्ता की अधीनता में जीने वालों अर्थात् उद्धार नहीं पाए हुए लोगों के बारे में पौलुस तीन खास बातें बताता है। पहली खास बात यह है कि अपनी उद्धार-विहीन अवस्था में हम संसार की रीति (शैली, पद्धति) के अनुसार जीवन-व्यवहार करते थे। इसका मतलब यह है कि हम संसार के नियंत्रण में थे और सत्ताधिकार, लोभ-लालच एवं अभिलाषाओं के आधार पर निर्मित इस संसार की शैतानी पद्धति के वश में थे और इसके बुरे व दुष्टतापूर्ण तौर-तरीकों को मानते थे तथा इनका अनुसरण करते थे। पौलुस दूसरी खास बात यह बताता है कि अपनी उद्धार-विहीनता की अवस्था में हम “आकाश में शासन करने वाले अधिकारी” के चलाए चलते थे। “वायुमंडल का शासक और अधिपति” या “आकाश में शासन करने वाला अधिकारी” शैतान की ओर इंगित करता है। चूँकि हम परमेश्वर से अलग थे और सांसारिक रीति-विधियों के अनुसार जीवन बिताते थे और सांसारिक रीति-विधियाँ व पद्धतियाँ शैतान के वश में हैं, इस प्रकार हम भी शैतान के कब्जे में थे और उसके धोखे में फंसे हुए थे। इस प्रसंग में पौलुस तीसरी बात यह दर्शाता है कि हम अपनी उद्धार-विहीन अवस्था में “उस आत्मा” के नियंत्रण में चलते थे “जो अब भी आज्ञा न मानने वालों में क्रियाशील” है। जब हम संसार के तौर-तरीकों के अनुसार तथा शैतान की अधीनता में जीवन जीते थे, तब हमारा जीवन-व्यवहार भी परमेश्वर को नहीं जानने वाले अन्य लोगों की तरह था। हम भी परमेश्वर के प्रति अनाज्ञाकारी जीवन बिता रहे थे।

“उन्हीं में हम सब भी पहिले अपने शरीर की लालसाओं में दिन बिताते थे, शारीरिक तथा मानसिक इच्छाओं को पूरा करते थे, और अन्य लोगों के समान स्वभाव से ही क्रोध की संतान थे” (इफि0 2:3)। चूँकि हम ‘आदम में’ जन्म लिए, परमेश्वर से अलगाव की अवस्था में थे; इसलिए निरन्तर अपनी शारीरिकता (पुराना मनुष्यत्व, पाप-स्वभाव) के नियंत्रण में जीवन जीते रहे। **शारीरिकता** अर्थात् बुराई करने की आन्तरिक अभिलाषा। **शारीरिकता** सिर्फ पाप की अभिलाषा रखती है। चूँकि अपनी उद्धार-रहित अवस्था में हम अपनी **शारीरिकता** के ही प्रभाव एवं नियंत्रण में जी रहे थे, इसलिए हमारा मस्तिष्क, हमारी इच्छा एवं हमारे मनोवेग इसी के अधीन थे; और नतीजतन हमारी देह भी (जानना, सुनना, कहना, देखना इत्यादि गतिविधियां)। चूँकि हम आदम में जन्म लिए, परमेश्वर से अलगाव की अवस्था में थे, शैतान के वश में थे और शारीरिकता के चलाए जीवन बिताते थे; इसलिए पौलुस हमें “परमेश्वर के कोप के भाजन” या **उसके** “क्रोध की संतान” कहता है। हम सिर्फ उससे अलगाव की अवस्था में ही नहीं जन्मे थे बल्कि अपने पाप के कारण तथा परमेश्वर को अस्वीकार करने के कारण हम ईश्वरीय प्रकोप के पात्र थे (रोमि0 1:18)। प्रत्येक मनुष्य इसी अवस्था में जन्म लेता है-परमेश्वर से पृथकता की अवस्था में, शैतान के सत्ताधिकार की अधीनता की अवस्था में, शारीरिकता (पाप-स्वभाव) के नियंत्रण में कार्य-व्यवहार करने की अवस्था में, और ईश्वरीय प्रकोप के भाजन की अवस्था में।

“परन्तु परमेश्वर ने जो दया का धनी है, अपने उस महान प्रेम के कारण जिस से उसने हमसे प्रेम किया, जबकि हम अपने

अपराधों के कारण मरे हुए थे उसने हमें मसीह के साथ जीवित किया – अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ – और मसीह यीशु में उसके साथ उठाया और स्वर्गीय स्थानों में बैठाया” (इफि0 2:4-6)। ‘आदम में’ अर्थात् हमारी उद्धार-विहीनता की अवस्था बिल्कुल आशा-विहीन अवस्था थी। हमारे पास कोई भी आशा नहीं थी यानि अपने आप को बचाने में हम बिल्कुल असमर्थ एवं निरुपाय थे – आशा-विहीन। तब हमारी अवस्था महामच्छ द्वारा निगले गये योना नबी की अवस्था की तरह थी। उस महामच्छ के पेट में से बच निकलने के लिए उसके पास भी कोई उपाय नहीं था। यदि परमेश्वर कुछ न करता तो योना उस महामच्छ के पेट में ही मर जाता। ‘आदम में’ हमारी भी यही दशा थी। यदि हमें छुटकारा प्रदान करने के लिए प्रभु परमेश्वर ने कुछ नहीं किया होता तो हम सब अपने पापों में ही मर जाते और सदाकालीन दण्ड के लिए नरक जाते। स्वयं को छुटकारा देने के लिए हमारे पास कोई भी उपाय नहीं था – हम बिल्कुल लाचार व निरुपाय थे।

परन्तु सुखद समाचार यह है कि परमेश्वर “दया का धनी” है और हमारे प्रति उसका प्रेम असीम है। स्मरण रहे, **दया** का अर्थ यह नहीं कि ‘हम जिस लायक हैं वह मिले’। हम तो नरक-दंड के लायक थे, किन्तु परमेश्वर हमें स्वर्गिक अनन्त जीवन प्रदान करता है। “आदम में” हम क्या थे तथा “मसीह में” परमेश्वर हमें क्या प्रदान करता है, इस सम्बन्ध में पौलुस द्वारा वर्णित इन सच्चाइयों के बारे में घंटो मनन-चिंतन किया जा सकता है। हम परमेश्वर से अलगाव एवं पापी अवस्था में पैदा हुए। शैतान के सत्ताधिकार और शारीरिकता के नियंत्रण में परमेश्वर के प्रकोप के पात्र थे। हाँ,

परमेश्वर के प्रकोप के भाजन और नरक में अनन्तकालीन दंड के लायक थे।

परन्तु 'मनुष्य जिस लायक है, वह उसे नहीं देने' (अर्थात् दयालुता) में धनाढ्य तथा मनुष्य के प्रति प्रेमी प्रभु परमेश्वर ने हमें "ख्रीष्ट यीशु के साथ जीवित" किया। हमारे प्रति परमेश्वर का प्रेम एवं उसका अनुग्रह इतना महान है कि उसने हमें उससे पृथकता की अवस्था में नहीं छोड़ दिया। ईश्वरीय न्याय का तकाजा है कि पाप को दंडित किया जाय। लेकिन हमें अनन्त दंड देने के बजाय अपने अनुग्रह एवं प्रेम में पिता परमेश्वर ने अपने **एकलौते पुत्र** को हमारे बदले यह दंड सहने भेजा ताकि हम उसकी सहभागिता (मेल-मिलाप, सामीप्य व एकता) में वापस आ सकें (याकूब 2:13)। इस प्रकार मसीह ने हमें हमारी पुरानी ईश्वर-विहीनता एवं पापी दशा से छुटकारा प्रदान किया है और (परमेश्वर के समक्ष) अपने साथ (मसीह में) नये जीवन एवं पवित्रता की अवस्था प्रदान की है।

"और मसीह यीशु में उसके साथ उठाया और स्वर्गिक स्थानों में बैठाया" (इफि0 2:6)। यहाँ पौलुस वही सच्चाई दर्शाता है जो रोमियों के छठवें अध्याय में है। अर्थात् हमारे बदले मसीह की एवजी मृत्यु के कारण तथा पवित्र आत्मा द्वारा मसीह में हमारी स्थापना के कारण, (आध्यात्मिक मायने में) मसीह के साथ जो कुछ हुआ वह हमारे साथ भी हुआ। जब वह क्रूसित हुआ, तब (परमेश्वर की दृष्टि में) हम भी उसके साथ क्रूसित हुए। उसे दफनाया (गाड़ा) गया, वह पुनः जीवित हो उठा और पिता के दाहिने ओर विराजमान है। हम भी नये जीवन की चाल में आचरण के लिए

(आध्यात्मिक) नवजीवन पाये (जिलाए गए) हैं, यानि "मसीह में" पिता के दाहिने ओर अपनी नयी स्थिति से प्राप्त नई जीवन-दृष्टि के आधार पर। हाँ, परमेश्वर की दृष्टि में यही हमारी आध्यात्मिक (आशीषित) अवस्था है, भले ही अपनी महसूसियत अथवा कार्य-व्यवहार में इस सच्चाई का हम सदैव ऐसा ही अनुभव नहीं करते। कारण यह है कि हमारे दैनिक कार्य-व्यवहार के हमारी नई आध्यात्मिक अवस्था के अनुरूप (अर्ह,योग्य या लायक) होने की प्रक्रिया एक लम्बी व धीमी विकास-प्रक्रिया है जिसे पवित्र आत्मा प्रत्येक विश्वासी के जीवन में क्रियान्वित कर रहा है। अपनी अयोग्यता की अवस्था में प्रभु परमेश्वर के प्रेम-पात्र होने की सच्चाई को मानना (ग्रहण करना) हमारी एक बड़ी समस्या है। यह प्रक्रिया इस ज्ञान से प्रारम्भ होती है कि मसीह में हमें कौन सी आध्यात्मिक आशिषें एवं अधिकार प्राप्त हैं। जब इस सच्चाई के प्रति हमारा हृदय (मन) कायल, आश्वस्त एवं सुनिश्चित होने लगता है, तब हम इस पर विश्वास-भरोसा करते हैं और सत्य पर यह विश्वास हमारे जीवन में मसीह का स्वभाव निर्मित करता है। यहाँ मसीह के समान बनने के अपने कर्म-प्रयास में फंसने की बात नहीं की जा रही है। इस सम्बन्ध में हमें अपना मन व आशा-भरोसा पवित्र आत्मा पर केन्द्रित रखना है, अपने धर्म-कर्म पर नहीं। वही हमारी अन्तरात्मा की सत्य में अगुवाई करता है, जिसके परिणामस्वरूप हमारे जीवन में मसीह के जीवन-स्वभाव का निर्माण होता है।

"जिससे कि आने वाले युगों में वह अपनी उस कृपा से जो मसीह यीशु में हम पर है अपने अनुग्रह का असीम धन दिखाए"

(इफि0 2:7)। यहाँ पौलुस यह कह रहा है कि मसीह में हमारे लिए पिता परमेश्वर ने जो महाकार्य (अनुपम कार्य) सम्पन्न किया है, वह शाश्वत्काल तक ईश्वरीय अनुग्रह की महानता को प्रदर्शित करता रहेगा। इस प्रसंग में हमें परमेश्वर के अनुग्रह की परिभाषा नहीं भूलनी चाहिए : 'मनुष्य को वह प्रदान करना जिसके लायक वह है ही नहीं'। सम्पूर्ण मानव इतिहास में ऐसा दान-वरदान पाने वालों की अपात्रता (अयोग्यता) का अन्य कोई उदाहरण नहीं पाया जाता जैसा कि हम अपात्र लोगों के बदले मसीह ने अपनी मृत्यु द्वारा जीवन-दान प्रदान किया। इस सच्चाई के मनन-चिन्तन से हमें परमेश्वर के अनुग्रह की महानता का ज्ञान होगा। इतना ही नहीं बल्कि प्रथम आदम में हमारी भ्रष्टता व दुर्दशा की भयानकता का भी ज्ञान होगा। परमेश्वर के अद्भुत अनुग्रह के लिए उसका लाखों-लाख धन्यवाद हो।

"क्योंकि विश्वास के द्वारा अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ है- और यह तुम्हारी ओर से नहीं वरन् परमेश्वर का दान है, यह कार्यो के कारण नहीं जिससे कि कोई घमंड करे" (इफि0 2:8-9)। ऐसा कोई भी क्रिश्चियन नहीं जो मसीह में प्राप्त उद्धार के लायक था। हाबिल, सेत, हनोक, नूह, अब्राहम, इसहाक, याकूब, यूसुफ, मूसा, दाऊद, मरियम, यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला, यीशु के चेले, आप, हम या अन्य कोई भी "मसीह में" परमेश्वर-प्रदत्त उद्धार के लायक नहीं था। सब लोग नरक में अनन्त दंड के पात्र थे। परन्तु परमेश्वर की असीम दया एवं उसके महान प्रेम के कारण हम पाप के दोष, दंड और अधिकार से छुड़ाये गये (उद्धार पाये) हैं, और परमेश्वर की पवित्र व धर्मी संतान बनाए गये हैं।

“क्योंकि हम उसके हाथों की कारीगरी हैं, जो मसीह यीशु में भले कार्यों के लिए सृजे गए हैं जिन्हें परमेश्वर ने प्रारम्भ से ही तैयार किया कि हम उन्हें करें” (इफि0 2:10)। इफिसियों की पत्री के दूसरे अध्याय के प्रारम्भिक तीन पदों में बतायी गई बातों को याद करें – आदम में हमारी क्या दशा थी? उस पुराने जीवन में हमारा कार्य-व्यवहार कैसा था? शारीरिक (पाप-स्वभाव की) अभिलाषाओं का जीवन। अब चौथे से नौवें पदों में दर्शायी गयी सच्चाइयों का स्मरण करें – अर्थात् परमेश्वर के अद्भुत अनुग्रह से “मसीह में” प्राप्त नयी आत्मिक अवस्था (आशिषें)। अब इस दसवें पद में “मसीह में” हमारी स्थापना या नयी अवस्था का परिणाम (फल) बताया गया है – **भले कार्य**। **मसीह में** अपनी इस नयी आध्यात्मिक अवस्था (आशिषें) को जिस हद तक हम जानते-समझते, विश्वास के साथ अपनाते तथा इसमें विश्वास-विश्राम करते हैं, उतना ही भले कार्य-व्यवहार में आगे बढ़ते हैं। जैसे शारीरिकता या पाप-स्वभाव का उपोत्पाद (बाइप्रोडक्ट) पाप है, उसी प्रकार **मसीह के साथ हमारी सहभागिता** का उपोत्पाद भले कार्य हैं।

‘आदम में’ हमारे पुराने स्वभाव तथा “मसीह में” प्राप्त हमारे नये स्वभाव की तुलना से सम्बन्धित इन शब्दों पर ध्यान दें : “इस कारण स्मरण करो कि तुम जो शारीरिक रीति से अन्य जाति हो – और जो लोग शरीर में हाथ के किए हुए ख़तने से ख़तनावाले कहलाते हैं, वे तुम को ख़तनारहित कहते हैं (इफि0 2:11)। यहूदियों में ख़तना बहुत महत्वपूर्ण माना जाता था, क्योंकि यही वह पहचान-चिन्ह था जिससे वे स्वयं को संसार के अन्य लोगों से विशिष्ट अर्थात् परमेश्वर के चुने हुए लोग मानते थे। चूँकि वे परमेश्वर द्वारा चुने गये लोग थे और ग़ैरयहूदी नहीं, इसलिए वे ग़ैरयहूदियों को नीची दृष्टि से देखते थे और उन्हें भ्रष्ट व बुरा समझते थे।

“स्मरण करो कि तुम लोग उस समय मसीह से अलग और इस्राएल की प्रजा कहलाए जाने से वंचित थे, प्रतिज्ञा की गई वाचाओं के भागीदार न थे, और आशाहीन तथा संसार में परमेश्वर-रहित थे। परन्तु तुम जो पहिले मसीह यीशु से दूर थे अब मसीह के लहू के द्वारा उसमें समीप लाये गए हो” (इफि0 2:12-13)। इफिसुस के विश्वासियों को पौलुस ने उनकी पुरानी अवस्था का स्मरण कराया – मसीह से अलग थे और इस्राएल की प्रजा होने से वंचित थे और प्रतिज्ञा की वाचाओं के भी भागीदार नहीं थे। इस्राएल को परमेश्वर-प्रदत्त उद्धारकर्ता सम्बन्धी वायदे की सदैव आशा थी, जबकि ग़ैरयहूदियों के पास ऐसी प्रतिज्ञा व आशा नहीं

थी। सम्पूर्ण पुराना नियम का इतिहास यह दर्शाता है कि प्रभु परमेश्वर ने इस्राएल की देखभाल व संरक्षा की तथा आशीषित किया। प्रभु परमेश्वर ने उनके लिए सदैव एक ऐसा उपाय किया कि उसके समक्ष ग्रहणयोग्य हो सकें। गैरयहूदियों को ऐसा कुछ नहीं दिया गया था। गैरयहूदी लोग परमेश्वर, उसकी वाचाओं तथा उसके वायदों से अनभिज्ञ थे। गैरयहूदी लोग पाप से छुटकारा देने आने वाले प्रतिज्ञात् उद्धारकर्ता के बारे में भी अनभिज्ञ थे। हम भी गैरयहूदियों में से हैं और मसीह से अलग (दूर) थे तथा परमेश्वर – प्रदत्त वायदों और वाचाओं से अपरिचित थे। लेकिन पौलुस आगे यह दर्शाता है कि हम (गैरयहूदी) जो परमेश्वर तथा उसकी वाचाओं एवं प्रतिज्ञाओं से वंचित थे, अब मसीह के लहू के द्वारा उसके समीप लाए गए हैं।

“क्योंकि वह स्वयं हमारा मेल है जिसने बैर अर्थात् विभाजित करने वाली दीवार को गिराकर दोनों को एक कर दिया और अपने शरीर में बैर अर्थात् उस व्यवस्था को जिसकी आज्ञाएं विधियों की रीति पर आधारित थीं, मिटा दिया कि दोनों से अपने में एक नए मनुष्य की सृष्टि करके मेल करा दे” (इफि0 2:14-15)। आगे चल कर **व्यवस्था** के अधीन यहूदी लोग आत्म-धर्माभिमानी (सेल्फ राइचेंस) हो गए। चूँकि गैरयहूदी व्यवस्था-पालन नहीं करते थे, इसलिए यहूदी उन्हें अधार्मिक मानकर स्वयं को उनसे बेहतर या धार्मिक समझते थे। इससे गैरयहूदियों और यहूदियों के मध्य शत्रुता को मौका मिला। परन्तु अब महिमावान परमेश्वर ने, व्यवस्था द्वारा पैदा की गई, इस शत्रुता रूपी दीवार को “मसीह में” ध्वस्त कर (तोड़) दिया है। क्योंकि मसीह के आगमन एवं उसके द्वारा सम्पन्न

किए गए प्रतिज्ञात् उद्धार-कार्य के बाद अब व्यवस्था लागू नहीं है (अब व्यवस्था नहीं, अनुग्रह का काल है)। अब यहूदियों के पास परमेश्वर के अनुग्रह के सिवाय अपने किसी अन्य धर्म-कर्म पर अहंकार करने का कोई कारण नहीं रहा। अब उनके आत्म-धर्माभिमान का कोई अवसर नहीं रह गया। अब प्रभु यीशु मसीह में पृथ्वी की सभी जातियां समान स्तर पर अर्थात् एक समान हैं। अब यहूदी और गैरयहूदी दोनों में से, जो मसीह को अपना उद्धारकर्ता मानकर उस पर विश्वास करता है, वह परमेश्वर की संतान होता है और जो ऐसा नहीं करता, वह परमेश्वर से दूर (पृथक) रहता है (चाहे वह यहूदी हो या गैरयहूदी)।

“और क्रूस के द्वारा बैर को नाश करके दोनों को एक देह बनाकर परमेश्वर से मेल कराए। उसने आकर तुम्हें जो दूर थे और उन्हें भी जो निकट थे मेल-मिलाप का सुसमाचार सुनाया। क्योंकि उसी के द्वारा हम दोनों की, एक ही आत्मा में, पिता के पास पहुंच होती है” (इफि0 2:16-18)। पहले यहूदी लोग परमेश्वर के चुने हुए खास लोग थे, अन्य लोग नहीं। परन्तु अब ऐसा नहीं है। क्रूस पर मसीह द्वारा सम्पन्न किए गए अद्वितीय विमोचन कार्य द्वारा, अब हम सब (पवित्र) आत्मा में परमेश्वर के समक्ष उसकी संतान के समान स्वीकार्य हैं। परमेश्वर की संतान होने के कारण उसके समस्त विश्वासी मसीह में एक देह हैं। हाँ, अब **मसीह में** पवित्र आत्मा द्वारा परमेश्वर तक हम सब की पहुंच है। वह हमारा स्वर्गिक पिता है और उसके अनुग्रहपूर्ण सिंहासन के समक्ष हम कभी भी हियाव से जा सकते हैं (इब्रा0 10:19)। मसीह के आगमन से पूर्व ऐसा सम्भव नहीं था। क्योंकि व्यवस्था के अनुसार सच्चे परमेश्वर की उपासना कुछ

खास शर्तों के अधीन सिर्फ यरूशलेम में बने ईश्वरीय मंदिर में ही सम्भव थी। कोई भी ख़तना-विहीन ग़ैरयहूदी उस मंदिर के भीतरी कक्ष में प्रवेश नहीं कर सकता था। बहरहाल, जब क्रूस पर बलिदान होते समय मसीह के मुंह से यह पवित्र वाणी निकली – “पूरा हुआ”; तब उस मंदिर का पर्दा ऊपर से नीचे तक फट गया। यह इस बात का ईश्वरीय प्रमाण (चिन्ह) था कि अब मसीह के माध्यम से संसार की सभी जातियां पिता परमेश्वर के पास बेरोकटोक आ सकती हैं।

“अतः तुम अब विदेशी और अजनबी न रहे, परन्तु पवित्र लोगों के संगी स्वदेशी और परमेश्वर के कुटुम्ब के बन गये हो। और प्रेरितों तथा भविष्यद्वक्ताओं की नींव पर, जिसके कोने का पत्थर मसीह यीशु स्वयं हैं, बनाए गए हो। जिसमें सम्पूर्ण रचना एक साथ मिलकर प्रभु में एक पवित्र मंदिर बनती जाती है, जिसमें तुम भी आत्मा के द्वारा परमेश्वर का निवास स्थान होने के लिए एक साथ बनाए जाते हो” (इफि0 2:19-22)। पुराना नियम काल में इस धरती पर पहला ईश्वरीय निवास-स्थान “मिलाप-तम्बू” था, और बाद में यहूदियों द्वारा (यरूशलेम में) पत्थर से निर्मित मंदिर। आजकल इस धरती पर परमेश्वर का निवास-स्थान उसके प्रत्येक (विश्वासी) संतान में है। उसके सभी विश्वासी पवित्र आत्मा द्वारा “मसीह में” स्थापित किए गए हैं और “प्रभु में” एक साथ एक “पवित्र मंदिर” के रूप में विकसित हो रहे हैं।

“इस कारण मैं उस पिता के समक्ष घुटने टेकता हूँ जिस से स्वर्ग और पृथ्वी पर प्रत्येक कुल का नाम रखा जाता है, कि वह अपनी महिमा के धन के अनुसार तुम्हें यह दान दे कि तुम उसके

आत्मा के द्वारा अपने भीतरी मनुष्यत्व में सामर्थ्य पाकर बलवान होते जाओ " (इफि० ३:१४-१६)। ध्यान दें! उसकी "महिमा के धन के अनुसार"। मूसा ने भी परमेश्वर की महिमा (तेज) का दर्शन करने का निवेदन किया था (निर्ग० ३३:१८), और प्रभु परमेश्वर ने उसके इस निवेदन के प्रत्युत्तर में यह जवाब दिया था, "मैं स्वयं अपनी सारी भलाई तेरे सामने प्रकट करूँगा" (निर्ग० ३३:१९)। इसके बाद उसे प्रभु परमेश्वर ने अपनी महिमा (तेज) का अर्थ समझाया था - अर्थात् उसकी महिमा का मतलब उसका अनुग्रह, उसकी दया तथा पापी मनुष्य के प्रति उसका करुणामय प्रेम (निर्ग० ३४:६)। पौलुस ने यही प्रार्थना किया कि मसीही जन परमेश्वर की सामर्थ्य (भलाई) में बलवान हों। क्या परमेश्वर के महिमा रूपी धन की कोई सीमा है? नहीं। और न ही पवित्र आत्मा द्वारा हमें प्रदान की जाने वाली सामर्थ्य (भलाई) की कोई सीमा है (कुलु० १:११)। मसीही जन की दुर्बलता का कारण उसकी शारीरिकता (पाप-स्वभाव, आदम-स्वभाव) है। जिस सीमा तक हम शारीरिकता के चलाए चलेंगे उस सीमा तक अपने जीवन में पवित्र आत्मा द्वारा दी जाने वाली आन्तरिक शक्ति का अनुभव नहीं कर पायेंगे। इसके विपरीत जितना अधिक हम (पवित्र) आत्मा के चलाए चलेंगे, उतना ही अधिक मसीह के स्वभाव की समानता में परिवर्तित होते (ढलते) जाएंगे और उसकी सामर्थ्य का उतना ही अधिक अनुभव करेंगे (दू० कुरि० ३:१७-१८)।

"विश्वास के द्वारा मसीह तुम्हारे हृदय में निवास करे कि तुम प्रेम में नींव डाल कर और जड़ पकड़ कर, सब पवित्र लोगों के साथ भली-भाँति समझ सको कि उसकी चौड़ाई, लम्बाई, ऊँचाई और गहराई कितनी है, और मसीह के उस प्रेम को जान सको जो

ज्ञान से परे है, कि तुम परमेश्वर की समस्त परिपूर्णता तक भरपूर हो जाओ" (इफि0 3:17-19)। पौलुस यह भी प्रार्थना करता है कि जैसे-जैसे हमारी अन्तरात्मा में विश्वास द्वारा खीष्ट का जीवन निर्मित होता है, वैसे-वैसे प्रभु के प्रेम की विशालता को हम पहचानने लगते हैं और उसके प्रेम रूपी आधार में जड़ पकड़ते जाते हैं। जितना अधिक हम उसके प्रेम की विशालता एवं गहराई को जानने-समझने लगते हैं उतना ही अधिक उसकी समीपता में बढ़ते हैं, उसके (स्वभाव की) समानता में ढलते जाते हैं। यह प्रक्रिया हमारे जीवन में जितने अधिक समय तक चलती रहती है उतना ही अधिक हम "मसीह के स्वभाव" की समानता में ढलते जाते हैं – जब तक कि "परमेश्वर की समस्त परिपूर्णता तक भरपूर" नहीं हो जाते। हम जितना अधिक पवित्र आत्मा के चलाये चलते हैं उतना ही अधिक पवित्र आत्मा हमें "मसीह के जीवन" से भरता जाता है, जो "परमेश्वर की समस्त परिपूर्णता" हैं।

"अब जो ऐसा ऐसा सामर्थी है, उस सामर्थ्य के अनुसार जो हम में क्रियाशील है, कि हमारी विनती और कल्पना से कहीं अधिक बढ़कर कार्य कर सकता है, उस परमेश्वर की महिमा कलीसिया में और मसीह यीशु में पीढ़ी से पीढ़ी तक युगानुयुग होती रहे। आमीन!" (इफि0 3:20-21)। प्रायः इस पद (3:20) को मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में ही उद्धृत किया जाता है। परन्तु हम जिन बातों पर विचार कर रहे हैं उनके प्रसंग में इसकी महत्ता और बढ़ जाती है। पौलुस का तात्पर्य यह है कि परमेश्वर की समस्त परिपूर्णता से भरपूर होने तक, विश्वासीजन को "मसीह के स्वभाव" में ढालने के कार्य को पूरा करने में परमेश्वर सिर्फ सक्षम

ही नहीं बल्कि हमारी सोच-समझ से परे तक यह कार्य पूरा करने में सामर्थ्यवान है।

जिस सामर्थ्य एवं अधिकार ने ख्रीष्ट को मृतकों में से जीवित किया और उसे पिता के दाहिने ओर विराजमान किया, वही सामर्थ्य एवं अधिकार हमारे जीवन में कार्य कर रहा है। अर्थात् मसीह के साथ हमारी एकता एवं पहचान को सुदृढ़ करते हुए "उसी के स्वभाव की समानता" में अधिकाधिक ढालना। इस सम्बन्ध में आत्मा और शरीर (शारीरिकता) के मध्य संघर्ष की अनदेखी नहीं की जानी चाहिए (गला0 5:17)। जब विश्वास द्वारा मसीह के साथ हम अपने (पुराने मनुष्यत्व के) सह-क्रूसित होने की आध्यात्मिक सच्चाई को अपनाते व स्मरण रखते हैं, तब शारीरिकता के नियंत्रण से मुक्त रहकर (पवित्र) आत्मा के चलाए आचरण करने में समक्ष होते हैं। जितना ही अधिक आत्मा के चलाए (नियंत्रण एवं प्रभाव में) हम चलते हैं, उतना ही अधिक "मसीह के स्वरूप की समानता" में ढलते जाते हैं – अर्थात् पवित्र आत्मा द्वारा मसीह के जीवन से अधिकाधिक भरे जाते हैं, और इस प्रकार हमारे जीवन के द्वारा उसकी आध्यात्मिक महिमा होती है (दू0 पत0 3:18)।

"इसलिए सावधान रहो कि तुम कैसी चाल चलते हो – निर्बुद्धि मनुष्यों के सदृश नहीं वरन् बुद्धिमानों के सदृश चलो। समय का पूरा पूरा उपयोग करो, क्योंकि दिन बुरे हैं। इस कारण निर्बुद्धि न हो, परन्तु यह जान लो कि प्रभु की इच्छा क्या है" (इफि0 5:15-17)। बेशक, हमें मसीह में एक नया जीवन मिला है। इसके अलावा, हम यह भी जानते हैं कि प्रभु यीशु मसीह हमसे प्रेम रखता है और परमेश्वर को पसन्द जीवन जीने में हमारी अगुवाई करने के

लिए उसने हमें पवित्र आत्मा प्रदान किया है। हमें इन सच्चाईयों को जानते, पहचानते हुए इनमें बने रहना है और विश्वासपूर्वक इन्हीं के आधार पर जीवन बिताना है। हमें ऐसा जीवन-आचरण नहीं करना है जैसे कि हम इन सच्चाईयों से अपरिचित हैं। दुनिया की दशा बद से बदतर होती जा रही है, और समय बड़ी तेजी से समाप्त होता जा रहा है। अतएव हमें लगातार पवित्र आत्मा के भरोसे जीवन व्यतीत करना है। अर्थात् हमें अपने आप को उसी के हाथों में सौंपते हुए उससे यह प्रत्याशा रखनी है कि अपने समय पर वह अपनी इच्छा प्रकट करेगा (हमारी अगुवाई करता रहेगा)।

“दाखरस पीकर मतवाले न बनो ,क्योंकि इससे लुचपन होता है, परन्तु आत्मा से परिपूर्ण होते जाओ, और आपस में भजन, स्तुति-गान व आत्मिक गीत गाया करो, और अपने अपने मन में प्रभु के लिए गाते तथा कीर्तन करते रहो। सदैव सब बातों के लिए हमारे प्रभु यीशु मसीह के नाम में परमेश्वर पिता को धन्यवाद दो, और मसीह के भय मे एक दूसरे के अधीन रहो” (इफि0 5:18-21)। हमारे जीवन का नियंत्रण पवित्र आत्मा के हाथ में होना चाहिए न कि शराब, नशीली दवाओं अथवा अन्य चीजों। यदि हम शारीरिकता के चलाए चलेंगे तो पवित्र आत्मा के बजाय अन्य शारीरिक अभिलाषाएं (नशीले पदार्थ, शराब, कामुकता, लोभ-लालच, भौतिकता या अधिकार-सत्ता जैसी अभिलाषाएं) हमारे जीवन पर कंट्रोल करेंगी। “आत्मा से परिपूर्ण” होना एक परिपक्वता-प्रक्रिया है। इसका अर्थ है, “पवित्र आत्मा द्वारा भरपूर किया जाना”, और पवित्र आत्मा हमें खीष्ट-जीवन से भरता है। यहाँ उन्नीसवें पद से इक्कीसवें पद तक पवित्र आत्मा से परिपूर्ण होने के तीन प्रमाण पाये जाते हैं,

अर्थात् हमारे जीवन में ख्रीष्ट-जीवन निर्मित करने की प्रक्रिया सम्बंधी पवित्र आत्मा के कार्य के तीन प्रमाण-चिन्ह। पहला प्रमाण-चिन्ह **विश्वासी के जीवन से सम्बंधित** है : "अपने-अपने मन में प्रभु के लिये गाते तथा कीर्तन करते रहो"। परमेश्वर के प्रति आनन्द, शांति एवं हल्के मन के साथ संतुष्टि। दूसरा प्रमाण-चिन्ह **परमेश्वर से सम्बन्धित** है : "सदैव **सब** बातों के लिए... परमेश्वर पिता को धन्यवाद"। सिर्फ अच्छी बातों के लिए ही नहीं बल्कि **सब बातों** के लिए "प्रभु यीशु मसीह के नाम में" पिता परमेश्वर को धन्यवाद अर्पित करना। तीसरा प्रमाण-चिन्ह **दूसरों से सम्बन्धित** है: "मसीह के भय (आदर) में एक दूसरे के अधीन रहो"।

विश्वासीजन जैसे-जैसे पवित्र आत्मा द्वारा भरपूर किया जाता है अर्थात् जैसे-जैसे वह मसीह के जीवन से परिपूर्ण होता जाता है, वैसे-वैसे उसके हृदय में पिता परमेश्वर के प्रति आनन्दपूर्ण धन्यवाद उमड़ता जाता है। इस आनन्द एवं धन्यवादपूर्ण जीवन-आचरण का इस्तेमाल करते हुए पवित्र आत्मा दूसरे लोगों को भी प्रोत्साहित एवं सुस्थिर करता है। पवित्र आत्मा के प्रभाव एवं नियंत्रण में जीवन व्यतीत करने वाले लोग एक-दूसरे की अधीनता स्वीकार करने में सक्षम होते हैं; क्योंकि ऐसे लोग परमेश्वर की भलाई एवं उसकी सर्वसत्ता पर टेक लगाए रहते (विश्वास-विश्राम करते) हैं।

“इसलिए मैं जो प्रभु का बंधुआ हूँ, तुम से निवेदन करता हूँ कि जिस बुलाहट से तुम बुलाए गए हो उसके योग्य चाल चलो” (इफि0 4:1)। इफिसुस के विश्वासियों को यह पत्री लिखते समय पौलुस रोम में एक कैदी था, परन्तु इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि वह स्वयं को मसीह यीशु का ‘कैदी’ (उसके आह्वान, आकर्षण एवं अधीनता से बंधा हुआ) समझता था। इफिसियों की पुस्तक के पहले तीन अध्यायों में उसने “मसीह में” विश्वासियों को प्राप्त आध्यात्मिक आशिषों की शिक्षा दी है। हमें हरेक आध्यात्मिक आशीष प्रदान की गई है : हम वयस्क संतानों की तरह चुने गए एवं दत्तक बनाए गये हैं, परमेश्वर के द्वारा ग्रहण किए गए हैं, छुटकारा एवं क्षमा प्रदान किए गये हैं, हमें एक उत्तराधिकार दिया गया है और पवित्र आत्मा रूपी बयाना (इफि0 1:3-14)। इतना ही नहीं, बल्कि सब सच्चे विश्वासी मसीह के साथ स्वर्गिक स्थानों में बैठाए गये हैं और परमेश्वर के पवित्र मंदिर हैं जिनमें वह अपने पवित्र आत्मा द्वारा निवास करता है (इफि0 2:5-6,22)।

अब चौथे अध्याय में पौलुस यह कहता है कि इन सारी आध्यात्मिक आशिषों से आशीषित होने के कारण प्रभु के विश्वासी के लिए मसीही जीवन (मसीह का जीवन) जीना सम्भव है (इफि0 4:1)। उपर्युक्त सभी आशिषों से आशीषित होने के कारण अब हमारा जीवन पहले से बिल्कुल भिन्न होना चाहिए। मसीह में हमारी आध्यात्मिक स्थिति (अवस्था) इस संसार में हमारे जीवन की दशा

(परिस्थितियों) को प्रभावित करेगी। मसीह में आने से पूर्व "मसीह का जीवन" हमारे लिए संभव नहीं था किन्तु "मसीह में" प्राप्त आध्यात्मिक आशिषों के कारण अब "ख्रीष्ट का जीवन" (ख्रीष्टीय जीवन) जीना संभव हो गया है। एक समय ऐसा था जबकि हम इस संसार में पाप एवं मृत्यु के नियंत्रण में जीवन जी रहे थे। लेकिन प्रभु परमेश्वर ने अपनी सामर्थ्य से हमें छुटकारा प्रदान किया, और इसके परिणामस्वरूप हम उसके घराने में शामिल हो गए (नया जन्म के द्वारा)। उसने हमें अपनी धार्मिकता का वस्त्र पहनाया और अपने "एकलौते पुत्र" यीशु मसीह के साथ (उसके समान व बराबर) सहभागिता प्रदान किया। परमेश्वर द्वारा किए गये इस परिवर्तन के ज्ञान रूपी सच्चाई पर हमें विश्वास और भरोसा रखना चाहिए तथा उद्धार-प्राप्ति से पूर्व के जीवन (आचरण) की ओर नहीं जाना चाहिए। हम केवल परमेश्वर के अनुग्रह मात्र से ही उसके घराने के सदस्य हुए हैं, और उसी ने हमें यह सामर्थ्य एवं इच्छा प्रदान की है कि उसके द्वारा दिये गये अद्भुत अनुग्रह एवं दया के योग्य जीवन जीएं (रोमि0 12:1-2)।

"अर्थात् सम्पूर्ण दीनता और नम्रता तथा धीरज के साथ प्रेम से एक दूसरे के प्रति सहनशीलता प्रकट करो, और यत्न करो कि मेल के बन्धन में आत्मा की एकता सुरक्षित रहे" (इफि0 4:2-3)। हमारी नई आध्यात्मिक अवस्था अथवा हमारी 'बुलाहट' के योग्य आचरण एक दीनतापूर्ण जीवन-आचरण है। पिता परमेश्वर के समक्ष हम अपनी असहाय (निरुपाय) दशा को पहचानते हुए यह स्वीकार करते हैं कि हमारे पास जो कुछ है तथा हम जो कुछ हैं, यह सब उसी की देन है। ऐसा आचरण एक विनम्र आचरण भी है। यहाँ

“विनम्रता” से हमारा मतलब है : “नियंत्रित शक्ति” (पावर अँडर कंट्रोल)। दूसरों के प्रति सहनशीलता और सुदृढ़ व्यवहार करने की इच्छा एवं शक्ति के लिए प्रभु परमेश्वर पर आश्रित आशा-भरोसा, लगन और विश्वास-विश्राम का जीवन ही (मसीही) “धीरज” है। हमारी (ईश्वरीय) बुलाहट के योग्य जीवन-आचरण की सामर्थ्य का **रोमियों** की पत्री के छठवें अध्याय में उल्लेख है। हमारे लिए यह ज्ञान एवं विश्वास अनिवार्य है कि हमारा पुराना आदम स्वभाव (पाप-स्वभाव) मसीह के साथ क्रूसित हो चुका है और हम जीवन की नयी चाल के लिए “जिलाए” गये हैं। ख्रीष्ट का जीवन अब हमारा जीवन है। इस सच्चाई को अपनाना जरूरी है। जैसे-जैसे अपने जीवन में ख्रीष्ट-जीवन के (क्रमिक) प्रकटन एवं विकास के लिए पवित्र आत्मा पर हम भरोसा रखना सीखते हैं, वैसे-वैसे इस जीवन की सत्यता को विश्वासपूर्वक ग्रहण करते हुए अपने व्यवहारिक जीवन में इसकी वास्तविकता का अनुभव करते हैं (यूह0 16:13-14; दू0 कुरि0 3:17-18)।

“और यत्न करो कि मेल के बंधन में आत्मा की एकता सुरक्षित रहे” (इफि0 4:3)। इस पद पर विशेष ध्यान दें। यहाँ “शरीर या देह की एकता” की बात नहीं कही गयी है। इसके विपरीत “आत्मा की एकता” की बात की गयी है। इसका मतलब यह नहीं कि हमें “एकता” पैदा करने का प्रयास करना है। यह कार्य पवित्र आत्मा पहले ही कर चुका है। ध्यान दें कि हमें तो “मेल (शांति) के बंधन” में इस (पवित्र आत्मा-प्रदत्त) एकता को सिर्फ बनाए (सुरक्षित) रखने के लिए कहा गया है। यहाँ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि “शांति” (मेल) तो पवित्र आत्मा का एक फल है।

जब हम आत्मा के अधीन जीवन जीते हैं, तब पवित्र आत्मा हमारे जीवन में शांति पैदा करता है, और यही शांति "भाईयों" में एकता बनाए रखेगी। जब हम पवित्र आत्मा के चलाए चलना सीखते हैं और हमारे जीवन में उसके फल प्रकट होते हैं तब दूसरों के साथ किसी भी परिस्थिति में मुकाबले, चुनौती या आक्रामक भावना के बगैर बातचीत की सामर्थ्य पाते हैं। ऐसे समय एक दूसरे के साथ असहमत होना सम्भव है, और एक दूसरे को रचनात्मक (सकारात्मक) रूप में प्रोत्साहित करना या चुनौती देना भी सम्भव है; किन्तु यह सब एक दूसरे की (आत्मिक विकास की) प्रेमपूर्ण व शांतिपूर्ण चिन्ता के साथ होगा (झगड़े व विवाद के लिए नहीं)। पवित्र आत्मा के चलाए चलते हुए ही पवित्र आत्मा-प्रदत्त एकता पवित्र आत्मा द्वारा सुरक्षित रखी जा सकती है। यह तो **उसी** के द्वारा दी गई एकता है जिसे **वही** बनाए रखेगा।

"एक ही देह है और आत्मा भी एक है : ठीक उसी प्रकार अपनी बुलाहट की एक आशा में तुम भी बुलाए गये थे। एक ही प्रभु, एक ही विश्वास, एक ही बपतिस्मा, और सब का एक ही परमेश्वर पिता है, जो सबके ऊपर और सबके मध्य और सब में है" (इफि0 4:4-6)। कभी-कभी हमारे विभिन्न विश्वास, मत एवं सिद्धान्तों के कारण यह सोचना आसान है कि हमें इस या उस मसीही समूह (ग्रुप) से अलग हो जाना चाहिए। ऐसा करते समय हम यह दर्शाने लगते हैं जैसे कि हम सब एक ही "मसीह की देह" के अंग नहीं हैं। उपर्युक्त पदों से यह सच्चाई सुस्पष्ट है कि सभी विश्वासियों की एक ही **देह**, एक ही **आत्मा**, एक ही **आशा**, एक ही **प्रभु**, एक ही **विश्वास**, एक ही **बपतिस्मा** और एक ही **परमेश्वर पिता** है।

गलतफहमी और गलत विचार हमारी शारीरिकता (पाप-स्वभाव) की देन हैं, जो कलीसिया में बाधाएं एवं मतभेद पैदा करने तथा इन्हें बनाए रखने का काम करते हैं। पवित्र आत्मा के चलाए चलने पर हम समस्त विश्वासियों में आत्मा की एकता बनाए रखते हैं, और हम सब को सत्य की सही पहचान में विकसित करने के लिए उसी (पवित्र आत्मा) पर ही आश्रित रहते हैं। हाँ, एक ही देह है और उसमें हम सब एक साथ हैं। एक ही पवित्र आत्मा है जो हम सब में एक ही उद्देश्य से कार्यरत है कि परमेश्वर की महिमा हेतु हम सबको मसीह के स्वरूप में ढाले। हमारे प्राण के पतवार समान मसीह में हमारी एक ही आशा है। हम सब के जीवन का एक ही स्वामी (प्रभु) है जिसने अपनी सम्पत्ति होने हेतु तथा अपने उपयोग हेतु हमें अलग किया (बुलाया) है। हाँ, परम प्रधान परमेश्वर में एक ही विश्वास है, और मसीह में तथा उसकी "मृत्यु का" एक ही बपतिस्मा है। अतः वर्तमान समय के विभिन्न विश्वास-विचार एवं सम्प्रदायों के बावजूद हम इस सच्चाई को ध्यान में रखकर विश्वास एवं धैर्यपूर्वक परमेश्वर की ओर दृष्टि (आस) लगाए रख सकते हैं कि उसकी प्रत्येक संतान उसकी अपनी सम्पदा है (इब्रा0 6:19, इफि0 2:10; रोमि0 6:13)।

“परन्तु हम में से प्रत्येक को मसीह के दान के परिमाण के अनुसार अनुग्रह दिया गया है। उसने कुछ को प्रेरित, कुछ को भविष्यद्वक्ता, कुछ को सुसमाचार-प्रचारक, कुछ को पास्टर और कुछ को शिक्षक नियुक्त कर के दे दिया, कि पवित्र लोग सेवा-कार्य के योग्य बनें और मसीह की देह तब तक उन्नति करे जब तक कि हम सब के सब विश्वास में और परमेश्वर के पुत्र के पूर्ण ज्ञान में एक न

हो जाएं, परिपक्व न बन जाएं, अर्थात् मसीह के पूरे डील-डौल तक बढ़ न जाएं। अतः हम आगे को बालक न रहें जो मनुष्यों की उग-विद्या, धूर्तता, भ्रम की युक्ति और सिद्धान्त-रूपी हवा के हर एक झोंके से उछाले और इधर-उधर घुमाए जाते हों” (इफि0 4:7,11-14)। कलीसिया के सिर एवं स्वामी के रूप में प्रभु यीशु मसीह अपनी सुइच्छा के अनुसार वरदानों का दाता भी है। ऊपर के पदों पर ध्यान दें कि प्रभु यीशु जिसको जो वरदान देना ठीक समझता है, उन्हीं वरदानों को देता है। हममें से कोई भी इन वरदानों का पात्र (लायक) नहीं है और न ही इन्हें अर्जित किया जा सकता है। यह वरदान केवल उसके अनुग्रह से प्रदान किए जाते हैं। चूँकि हम इनके लायक नहीं हैं और न तो इन्हें अपने किसी धर्म-कर्म से कमाए (अर्जित किए) हैं, इसलिए इन पर न तो हम घमंड कर सकते हैं और न ही आत्म-प्रदर्शन या आत्म-उल्लास।

आइये, अब यहाँ उल्लिखित वरदानों पर ध्यान दें। सबसे पहले प्रेरित रूपी वरदान का जिक्र है। यह वरदान कलीसिया की नींव स्थापित करने के उद्देश्य से प्रदान किया गया था। प्रभु परमेश्वर ने प्रेरितों का इस्तेमाल करते हुए नयी कलीसियाएं शुरू कीं और उन प्रेरितों को वचन को लिखने, वचन की शिक्षा देने तथा सदा-सर्वदा के लिए कलीसिया में परमेश्वर के वचन को स्थापित करने के लिए इस्तेमाल किया। इसके बाद भविष्यद्वक्ता के वरदान का उल्लेख है। नया नियम काल के भविष्यद्वक्ता कलीसिया को झूठे शिक्षकों से सुरक्षित (आगाह) करने के उद्देश्य से दिए गये थे और ऐसे लोग आज भी सक्रिय हैं। इसके पश्चात् सुसमाचार-प्रचारक रूपी वरदान का नाम आता है। दूसरों को मसीह के बारे में बताने

की असाधारण शक्ति एवं इच्छा रखने वालों को सुसमाचार-प्रचारक कहा जाता है। इसके बाद **पास्टर** रूपी वरदान का जिक्र है। मसीह यीशु के झुंड की देखरेख, अगुवाई, (आत्मिक) भरण-पोषण एवं संरक्षा करना पास्तरीय जिम्मेदारी है। बेशक, यीशु ही "प्रधान रखवाला" (मेषपाल) है, लेकिन अपने अधीन दूसरों को भी अधीनस्थ चरवाहेगिरी का वरदान प्रदान करता है। इसके पश्चात **शिक्षक** रूपी वरदान का नाम आता है। परमेश्वर के वचन की गहरी एवं गम्भीर सच्चाईयों की भूख-प्यास रखने वाले, शिक्षक कहलाते हैं। जैसे-जैसे शिक्षक को पवित्र आत्मा गहरी सच्चाईयाँ सिखाता है, वैसे-वैसे **शिक्षक** पवित्र आत्मा द्वारा प्रकट की गयी इन सच्चाईयों को अन्य लोगों में बांटता (सिखाता) रहता है। आगे ध्यान दें कि इन वरदानों का उद्देश्य क्या है।

"कि पवित्र लोग सेवा-कार्य के योग्य बनें और मसीह की देह तब तक उन्नति करे" (इफि0 4:12)। प्रेरित, भविष्यवक्ता, सुसमाचार प्रचारक और पास्टर-शिक्षक रूपी वरदान कलीसिया में परमेश्वर के लोगों की (आध्यात्मिक) आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रदान किए गये हैं, ताकि विश्वासियों का विकास हो, वे स्थिर एवं सुदृढ़ हों और परमेश्वर द्वारा मंडली निर्माण में इस्तेमाल किए जा सकें। ये वरदान कब तक के लिए दिए गये हैं?

"जब तक कि हम सब के सब विश्वास में और परमेश्वर के पुत्र के पूर्ण ज्ञान में एक न हो जाएं, परिपक्व न बन जाएं अर्थात् मसीह के पूरे डील-डौल तक बढ़ न जाएँ" (इफि0 4:13)। जब तक कि **विश्वास** में और मसीह के **ज्ञान** में हम सब **एक** न हो जाएं। जब

तक कि हमारे जीवन द्वारा खीष्ट-जीवन अपनी पूर्णता में प्रकट नहीं होने लगता।

“अतः हम आगे को बालक न रहें जो मनुष्यों की उग-विद्या, धूर्तता, भ्रम की युक्ति और सिद्धान्त-रूपी हवा के हर एक झोंके से उछाले और इधर-उधर घुमाए जाते हों, वरन् प्रेम में सच्चाई से चलते हुए सब बातों में उसमें जो सिर है अर्थात् मसीह में बढ़ते जाएं” (इफि0 4: 14-15)। कलीसिया को मसीह ने पवित्र आत्मा इसलिए दिया है कि कलीसिया परिपक्व होती जाए। अपरिपक्व विश्वासी की एक पहचान यह है कि वह अस्थिर मन, अस्थिर विचार और अस्थिर सिद्धान्त का व्यक्ति होता है और भिन्न-भिन्न लोगों से बातचीत या विभिन्न पुस्तकों के पढ़ने वगैरह के कारण अपने ईमान या सिद्धान्त बदलता रहता है। इसके विपरीत मसीह के स्वरूप में बढ़ते हुए अर्थात् परिपक्वता की ओर उन्मुख (विकासोन्मुख) विश्वासी की एक पहचान यह है कि उसमें मसीह पर तथा उसके वचन पर अटल विश्वास व भरोसा पाया जाता है, तथा प्रेम से सत्य को बताने (सिखाने) की परमेश्वर-प्रदत्त सामर्थ्य एवं इच्छा भी पायी जाती है।

“जिस से सम्पूर्ण देह, प्रत्येक जोड़ में एक साथ बंधकर और सुगठित होकर, प्रत्येक अंग के ठीक-ठीक कार्य करने के द्वारा बढ़ती जाती है और इस प्रकार प्रेम में स्वयं उसकी उन्नति होती है” (इफि0 4:16)। यदि आपके शरीर का कोई अंग नहीं है तो क्या आपका शरीर अपनी पूर्ण क्षमता के साथ कार्य कर सकेगा? नहीं। “मसीह की देह” (कलीसिया) के सम्बन्ध में भी यही बात सच है।

समस्त विश्वासियों के झुंड को कलीसिया कहा गया है। हम सब को परमेश्वर की भली-भावती इच्छा के अनुसार ठीक से कार्य करने के लिए एकता में, परमेश्वर के तौर-तरीकों से तथा पवित्र आत्मा पर आश्रित होकर कार्य-व्यवहार करना है। जैसे-जैसे प्रत्येक विश्वासी अपनी परमेश्वर-प्रदत्त भूमिका में कार्य करना सीखता है, वैसे-वैसे सम्पूर्ण देह लाभान्वित होती है, आत्मिक उन्नति करती है अर्थात् परमेश्वर-प्रदत्त विकास में बढ़ती (निर्मित होती) है।

“इसलिए मैं कहता हूँ और प्रभु में तुम्हें चेतावनी देता हूँ कि जिस प्रकार गैरयहूदी अपने मन की अनर्थ रीति पर चलते हैं, तुम आगे को वैसे न चलो। क्योंकि उस अज्ञानता के कारण जो उनमें है, और उनके मन की कठोरता के कारण, उनकी बुद्धि अन्धकारमय हो गयी है और वे परमेश्वर के जीवन से अलग हो गये हैं। वे सुन्न होकर यहाँ तक लुचपन में लग गए कि सब प्रकार के गन्दे काम करने के लिए लालायित रहते हैं” (इफि0 4:17-19)। इन बाइबेल पदों में पतन की ओर ले जाने वाली पाप की सर्पिलता (के चक्कर) का जिक्र है, और यह सर्पिलता “अपने मन की अनर्थ रीति पर चलने” से शुरू होती है। सांसारिक विचारों एवं इच्छाओं के अधीन सुख, शांति व आनन्द की तलाश में दुनिया के लोग किसी न किसी ‘चक्कर’ में जरूर फंसे रहते हैं। अनन्तकाल की दृष्टि में मूल्यहीन अर्थात् व्यर्थ की बातों व वस्तुओं के पीछे भागना, “अपने मन की अनर्थ रीति पर चलना” है। दुनिया वाले लगातार योजनाएं बनाते रहते हैं और परमेश्वर के बगैर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास करते हैं, लेकिन परमेश्वर यह चाहता है कि उसके विश्वासीजन की दृष्टि परमेश्वर की ओर लगी रहे और उसी पर आश्रित रहे, न कि संसार द्वारा दी जाने वाली चीजों पर। जब कोई जन अपने उद्धार के लिए मसीह पर विश्वास करना शुरू करता है तो प्रारम्भ में परमेश्वर के बारे में उसमें बहुत उत्साह होता है और सिर्फ उसी पर आशा-भरोसा रखना चाहता है। परन्तु कुछ समय

बाद अधिकतर नये मसीही यह सोचने लगते हैं कि सिर्फ ईश्वरीय अनुग्रह एवं दया पर आशा-भरोसा रखने के बजाय उन्हें परमेश्वर को प्रसन्न रखने के लिए कुछ "कर्म-प्रयास करना" जरूरी है। इस प्रकार उनके प्रारम्भिक विश्वास की **सरलता**, ताजगी, आनन्द तथा **पहला-सा प्रेम** धूमिल (गायब) होने लगता है (प्रका० 2:1-4)। इसीलिए आगे चलकर पौलुस यह कहता है कि उनके "मन की बुद्धि (समझ) अन्धकारमय हो गई है"। क्योंकि एक समय ऐसा था जबकि विश्वासीजन के लिए बाइबेलीय सच्चाईयां ताजी व उत्साहवर्धक लगती थीं, लेकिन अब वही बाइबेलीय बातें अस्पष्ट और उबाऊ लगती हैं। इसके बाद यह लिखा हुआ है कि "वे परमेश्वर के जीवन से अलग हो गए हैं"। अर्थात् हमारे सोच-विचार में परमेश्वर का कोई स्थान (प्रमुखता) नहीं रह जाता। प्रभु परमेश्वर से इस प्रकार की दूरी के कारण (आध्यात्मिक तौर पर) हम असंवेदनशील, निष्ठुर या कठोर होते जाते हैं और अन्ततः स्वयं को "लुचपन" तथा "सब प्रकार के गन्दे काम" के लिए सौंपने लगते हैं। बियावान में इस्राएली लोग जब परमेश्वर पर दृष्टि लगाए रहने के बजाय अपनी तात्कालिक परिस्थितियों पर ही ध्यान-मन लगाने लगे तब उनके मन अंधकारमय होते गये, वे परमेश्वर द्वारा बताए गये सत्य को पहचानने से दूर रहे। इसका परिणाम यह हुआ कि उनमें सच्चे **विश्वास** का अभाव रहा तथा पापपूर्ण प्रतिक्रिया का विकास हुआ (व्यव० 6:10-12)।

"यदि वास्तव में तुमने उसके विषय में सुना और जैसा यीशु में सत्य है उसमें सिखाए भी गए" (इफि० 4:21)। अब पौलुस

समस्या (पाप के चक्कर) के बजाय समस्या-समाधान (उपचार अर्थात् प्रभु यीशु) की ओर ध्यान आकर्षित करता है। यहाँ पौलुस द्वारा प्रयुक्त शब्दों पर ध्यान दें : "मसीह को जानना", "मसीह को समझना" "मसीह को सीखा"। मसीह को जानना, समझना या सीखना – उसके बारे में सिर्फ जानकारी करना नहीं है। उसे जानना, पहचानना या समझना आवश्यक (ज्ञान) है।

"यदि वास्तव में तुम ने उसके विषय में सुना और जैसा यीशु में सत्य है उसमें सिखाए भी गए, कि तुम पिछले चाल-चलन के पुराने मनुष्यत्व को उतार डालो जो भरमाने वाली अभिलाषाओं के अनुसार भ्रष्ट होता जाता है। और अपने मन के आत्मिक स्वभाव में नए बनते जाओ, और नये मनुष्यत्व को पहिन लो जो परमेश्वर के अनुरूप सत्य की धार्मिकता और पवित्रता में सृजा गया है" (इफि0 4:21-24)। मसीह में बने रहने और उसके जीवन का अवलोकन करने के द्वारा जो पहली सच्चाई हमें सुनायी और सिखायी गयी उसका ज़िक्र बाईसवें पद में है : "पुराने मनुष्यत्व को उतार डालो"। जब हम 'मसीह के साथ अपने सह-क्रूसित होने' की आत्मिक सच्चाई पर विश्वास-विश्राम करते हैं, तब "पुराना मनुष्यत्व" "उतार डाला" जाता (मृत्यु-स्थल में रखा रहता) है और हम उसके प्रभाव एवं नियंत्रण से मुक्त जीवन-आचरण करते हैं। प्रभु यीशु पर दृष्टि लगाए रहने के द्वारा इस सम्बन्ध में दूसरी प्रमुख सच्चाई यह सुनायी व सिखायी गयी है कि जब "पुराना मनुष्यत्व" उतार डाला जाता है तब पवित्र आत्मा को हमारे "मन के आत्मिक स्वभाव" को नया करने का अवसर मिलता है। जब हमारे मन-मस्तिष्क पर पवित्र आत्मा का नियंत्रण व प्रभाव होता है तब हम जीवन को ईश्वरीय

दृष्टिकोण से देखने लगते हैं, अर्थात् हमारे सोच-विचार में परिवर्तन आता है। इस प्रकार ख्रीष्ट-जीवन में हमारा विकास होता है, या यूँ कहें कि हमारे जीवन में पवित्र आत्मा द्वारा ख्रीष्ट-जीवन का पुनरुत्पादन (निर्माण या विकास) होता है ("नए मनुष्यत्व" को धारण करना)।

"इस कारण तुम में से प्रत्येक, झूठ बोलना छोड़कर, अपने पड़ोसी से सच बोले, क्योंकि हम आपस में एक दूसरे के अंग हैं" (इफि0 4:25)। अब चूँकि "पुराना मनुष्यत्व" उतार दिया गया है और **नया मनुष्यत्व** धारण कर लिया गया है, इसलिए हमारा जीवन-आचरण भिन्न होना चाहिए (इफि0 4:25-32)। यहाँ पौलुस यह क्यों याद दिलाता है कि हमें एक दूसरे से सच बोलना चाहिए? क्योंकि "हम आपस में एक दूसरे के अंग" हैं। किसी विश्वासी द्वारा अन्य किसी विश्वासी भाई से झूठ बोलना निरी मूर्खता है, क्योंकि ऐसा करना अपने आप से झूठ बोलना या अपने आपको धोखा देने जैसा है।

"क्रोध तो करो पर पाप न करो। तुम्हारा क्रोध सूर्य अस्त होने तक बना न रहे" (इफि0 4:26)। कुछ लोग यह सिखाते हैं कि सब तरह का गुस्सा (क्रोध) पाप है, लेकिन इस बाइबल-पद के अनुसार हरेक तरह का क्रोध पाप नहीं होता। तो कौन सा क्रोध पाप है और कौन सा क्रोध पाप नहीं होता? यदि हमारे विरुद्ध किसी ने कुछ किया है और हम क्रोधित हैं तो यह पाप है, क्योंकि हमारी दृष्टि "अपने आपे" (स्वार्थ) पर केन्द्रित है। प्रभु यीशु लोगों पर तब क्रोधित नहीं हुआ जब उन्होंने उसके प्रति बुरा व्यवहार किया, वह

लोगों पर तब क्रोधित हुआ जब उन्होंने परमेश्वर के विरुद्ध कार्य-व्यवहार किया।

“शैतान को अवसर न दो” (इफि0 4:27)। छब्बीसवें पद में हमने यह पढ़ा कि हमारा “क्रोध सूर्य अस्त होने तक” नहीं बने रहना चाहिए, अर्थात् हमें क्रोध की अवस्था में नहीं बने रहना चाहिए। जितनी देर हम क्रोध में होंगे उतना ही ‘पाप के सर्पिले चक्कर’ में पड़ने का खतरा बना रहेगा और हमारी **शारीरिकता** के द्वारा शैतान को हमारे जीवन पर उतना ही अधिक नियंत्रण व असर डालने का मौका मिलेगा। शारीरिकता में आचरण करने पर हम शारीरिकता के ही कार्य-व्यवहार करेंगे – ईर्ष्या-द्वेष, लड़ाई-झगड़े, क्रोध, मतभेद, फूट, बैर, दलबन्दी इत्यादि (गला0 5:19-21)।

“चोरी करने वाला फिर चोरी न करे, परन्तु भलाई करने के लिए अपने हाथों से परिश्रम करे, जिससे कि आवश्यकता में पड़े हुए को देने के लिए उसके पास कुछ हो” (इफि0 4:28)। उद्धार-प्राप्ति से पूर्व हम सिर्फ शारीरिकता के ही अधीन आचरण करते हैं, और सिर्फ अपने आप (स्वार्थ) की ही परवाह करते हैं। शारीरिकता के अधीन हमारा स्वार्थपूर्ण आचरण कई प्रकार से प्रकट होता है। कुछ लोगों में यह स्वार्थी आचरण **चोरी** करने के द्वारा प्रकट होता है। अतः पौलुस यह कहता है कि अब चूँकि “पुराना मनुष्यत्व” उतार डाला गया है और पवित्र आत्मा “नया मनुष्यत्व” **पहिना** रहा है, इसलिए हमारा चोरी व बेईमानी का कार्य-व्यवहार, अब कठिन परिश्रम एवं ईमानदारीपूर्ण आचरण में बदल जाना चाहिए। ऐसा सिर्फ हमारे ही फायदे के लिए नहीं, बल्कि दूसरों की आवश्यकतापूर्ति के

लिए भी है। किसी चोर का चोरी करना छुड़वा देना एक बात है, लेकिन उसके जीवन में चोरी की आदत व मनसा समाप्त करके नौकरी-धन्धे के द्वारा परिश्रम की कमाई खाने की आदत बनाना और अपनी कमाई से दूसरे जरूरतमंदों की मदद करने की तत्परता पैदा करना, सिर्फ पवित्र आत्मा के कार्य एवं ख्रीष्ट-जीवन में विकास से ही सम्भव है।

“कोई अश्लील बात तुम्हारे मुंह से न निकले, परन्तु केवल ऐसी बात निकले जो उस समय की आवश्यकता के अनुसार उन्नति के लिए उत्तम हो, जिससे कि सुनने वालों पर अनुग्रह हो” (इफि0 4:29)। हाँ, चूँकि **पुराना मनुष्यत्व** उतार दिया गया है और नया मनुष्यत्व (मसीह) **पहिन** लिया गया है और “मन के आत्मिक स्वभाव में” नवीनता आ गई है; अतः हमारा बोल-चाल भी बदल जाता है। अब हम में ऐसी शक्ति व इच्छा पैदा होती है कि हम अपनी बोली-भाषा (वाणी) द्वारा दूसरों के मन को प्रभु की ओर प्रोत्साहित कर सकते हैं।

“परमेश्वर के पवित्र आत्मा को शोकित मत करो, जिस से तुम पर छुटकारे के दिन के लिए छाप दी गई है” (इफि0 4:30)। स्मरण रहे कि हमारा पुराना मनुष्यत्व (आदम-स्वभाव या पाप-स्वभाव) मसीह के साथ क्रूसित किया जा चुका है। अब हमें मसीह का **स्वभाव** प्रदान किया गया है। इतना ही नहीं, सत्य का ज्ञान एवं उसकी समझ प्रदान करने हेतु हमें पवित्र आत्मा दिया गया है। अब हम सत्य पर विश्वास करने तथा सत्य के अधीन (अनुसार) आचरण करने के लिए स्वतंत्र हैं। जब हम विश्वास के सहारे

परमेश्वर पर आश्रित होकर जीवन व्यतीत नहीं करते, तब पवित्र आत्मा को **शोकित** करते हैं। यहाँ पौलुस के शब्दों पर ध्यान दें : (पवित्र आत्मा के द्वारा) "तुम पर छुटकारे के दिन के लिए छाप दी गई" है। यह "छाप" न केवल स्वामित्व का प्रतीक है, बल्कि इसमें सुरक्षा का भी भावार्थ निहित है (यूह0 10:28-29)।

"सब प्रकार की कड़वाहट, रोष, क्रोध, कलह और निन्दा, सब प्रकार के बैर-भाव सहित तुमसे दूर किए जाएं। एक दूसरे के प्रति दयालु और करुणामय बनो, और परमेश्वर ने मसीह में जैसे तुम्हारे अपराध क्षमा किए, वैसे ही तुम भी एक दूसरे के अपराध क्षमा करो" (इफि0 4:31-32)। क्या कभी किसी के प्रति आपके मन में कड़वाहट आयी? और आप इसे दूर करने की तमाम कोशिश किए मगर कोई कामयाबी हासिल नहीं हुई? बहरहाल, अब जबकि **पुराना मनुष्यत्व** उतार दिया गया है, मन में नयापन आने लगा है और नया मनुष्यत्व **पहिन** लिया गया है, तो ऐसी नयी शक्ति व इच्छा मिली है जो कड़वाहट, क्रोध और निन्दा-कलह की आदत को तो समाप्त करती ही है, इसके अलावा हमारे जीवन में आमूल परिवर्तन पैदा करती है (स्वार्थीपन के स्थान पर खीष्ट-केन्द्रित जीवन)। नतीजतन, हमारे जीवन में एक कोमल, क्षमाशील एवं प्रेमपूर्ण नया मन विकसित होता है।

इफिसियों की पत्री के पांचवे अध्याय का अध्ययन शुरू करने से पूर्व इसके चौथे अध्याय के सत्रहवें से चौबीसवें पदों को फिर से पढ़ लेना आवश्यक है, क्योंकि पांचवा अध्याय चौथे अध्याय की बातों से सम्बद्ध है : "इसलिए मैं कहता हूँ और प्रभु में तुम्हें चेतावनी देता हूँ कि जिस प्रकार गैरयहूदी अपने मन की अनर्थ रीति पर चलते हैं, तुम आगे को वैसे न चलो। क्योंकि उस अज्ञानता के कारण जो उनमें है, और उनके मन की कठोरता के कारण, उनकी बुद्धि अन्धकारमय हो गयी है, और वे परमेश्वर के जीवन से अलग हो गए हैं। वे सुन्न होकर यहाँ तक लुचपन में लग गए कि सब प्रकार के गन्दे काम करने के लिए लालायित रहते हैं। तुमने तो मसीह को इस प्रकार नहीं जाना – यदि वास्तव में तुमने उसके विषय में सुना और जैसा यीशु में सत्य है उसमें सिखाए भी गये, कि तुम पिछले चालचलन के पुराने मनुष्यत्व को उतार डालो जो भरमाने वाली अभिलाषाओं के अनुसार भ्रष्ट होता जाता है। और अपने मन के आत्मिक स्वभाव में नए बनते जाओ, और नये मनुष्यत्व को पहिन लो जो परमेश्वर के अनुरूप सत्य की धार्मिकता और पवित्रता में सृजा गया है" (इफि0 4:17-24)।

चूँकि हमारी शारीरिकता मसीह के साथ क्रूसित हो चुकी है और हमें एक नया स्वभाव प्रदान किया गया है, इसलिए इफिसियों के चौथे अध्याय में पौलुस कुछ ऐसी बातों का जिक्र करता है जो

हमारे जीवन का अंग होने लगती हैं : पौलुस ने पहली बात यह कही है कि विश्वासीजन को सदैव सच बोलना चाहिए। परमेश्वर-विरोधी बातों के प्रति क्रोधित होना चाहिए, लेकिन पवित्र आत्मा के चलाए चलने पर हमारे जीवन में स्वकेन्द्रित (स्वार्थी) क्रोध का कोई स्थान नहीं रहेगा। ऐसे विश्वासी अपने जीवन में शैतान को काम करने का मौका नहीं देते। ऐसा विश्वासी चोरी-चालाकी से कमाई करने के बजाय परिश्रम करके अपनी तथा दूसरे लोगों की आवश्यकतापूर्ति के लिए तत्पर रहता है। क्रूसित जीवन तथा पवित्र आत्मा के अधीन जीने वाला विश्वासी अविश्वास में बने रहकर पवित्र आत्मा को शोकित नहीं करता। ऐसे विश्वासी एक दूसरे के प्रति प्रेम पूर्ण व्यवहार करते हैं और जैसे मसीह ने परमेश्वर ने उन्हें क्षमा प्रदान किया है, वैसे वे भी एक दूसरे को क्षमा करते हैं।

“इसलिए प्रिय बालकों के सदृश परमेश्वर का अनुकरण करने वाले बनो” (इफि0 5:1)। इफिसियों की पत्री के पांचवे अध्याय का पहला शब्द “इसलिए” चौथे अध्याय की ओर इशारा करता है – अर्थात् पवित्र आत्मा द्वारा चौथे अध्याय में जो सच्चाईयाँ हमें दर्शायी गई हैं उनके आधार पर और पवित्र आत्मा-प्रदत्त क्षमता के कारण अब हमारा “मन परमेश्वर के पीछे-पीछे लगा” (उससे लिपटा) रहता है (भज0 63:8)। यहाँ प्रयुक्त वाक्यांश “प्रिय बालकों के सदृश” बच्चों जैसे सरल विश्वास के साथ परमेश्वर के पीछे चलने की ओर इंगित करता है।

“इसलिए प्रिय बालकों के सदृश परमेश्वर का अनुकरण करने वाले बनो, और प्रेम में चलो जैसे मसीह ने भी हमसे प्रेम किया

और सुखदायक सुगंधित भेंट बनकर हमारे लिए अपने आपको परमेश्वर के सम्मुख बलिदान कर दिया" (इफि0 5:1-2)। परमेश्वर की संतान होने के कारण विश्वासीजन को उसका स्वभाव तथा उस स्वभाव में शामिल समस्त आशिषें प्रदान की गई हैं। जैसे पिता परमेश्वर अपने सारे कार्य स्वार्थविहीन प्रेम से करता है उसी प्रकार जिस विश्वासी के जीवन में पवित्र आत्मा द्वारा ख्रीष्ट-जीवन विकसित किया जा रहा है, उसके सभी कार्य भी ईश्वरीय प्रेम की प्रेरणा में किए जाएंगे। **उसका** प्रेम ही था जिसके अधीन वह हमारे बदले मरा (बलिदान हुआ)। यही प्रेम, हमें प्राप्त नये स्वभाव की पहचान है। अतः जो विश्वासी प्रभु के प्रेम में "नींव डालकर" अपने नये आत्मिक स्वभाव के अनुसार जीवन बिताते हैं वे "अपने आपे" (अहंकार या स्वार्थ) के प्रति मरना (अर्थात् अपने आप का परित्याग करना) सीखते हैं (इफि0 3:17-19)।

"जैसा पवित्र लोगों के लिए उचित है, तुम्हारे मध्य न तो व्यभिचार, न किसी प्रकार के अशुद्ध काम, न लोभ का नाम तक लिया जाय, और न तो घृणित कार्य, न मूर्खतापूर्ण बातें, न ठट्टे की बातें जो शोभा नहीं देती हैं पाई जाएं, वरन् धन्यवाद ही दिया जाय। क्योंकि तुम यह निश्चयपूर्वक जानते हो कि कोई व्यभिचारी, अशुद्ध जन या लोभी मनुष्य अर्थात् मूर्तिपूजक, मसीह और परमेश्वर के राज्य का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता। कोई तुम्हें व्यर्थ बातों से धोखा न दे, क्योंकि इन ही के कारण आज्ञा न मानने वालों पर परमेश्वर का प्रकोप पड़ता है। इसलिए तुम ऐसे लोगों के सहभागी न बनो। पहिले तो तुम अन्धकार थे, परन्तु अब प्रभु में ज्योति हो।

अतः ज्योति की संतान के सदृश चलो – क्योंकि ज्योति का फल सब प्रकार की भलाई, धार्मिकता और सत्य है – परखो कि प्रभु किन बातों से प्रसन्न होता है” (इफि0 5:3-10)। जो बातें हमारे नये स्वभाव के अनुपयुक्त (अयोग्य या अशोभनीय) हैं; उन्हें अविश्वासी लोग आदतन करते रहते हैं। इन बुरी बातों को करते रहना उनका स्वभाव है, और एक समय ऐसा था कि हमारे बारे (विश्वासियों के बारे) में भी यही बात सच थी। लेकिन अब ऐसा नहीं है। यदि दिन भर की मेहनत व पसीने से हमारा शरीर मलिन (गन्दा) हो जाता है तो क्या हम उसी अवस्था में ही रहना पसन्द करते हैं? नहीं। हम घर पहुंचने पर अपनी सफाई (या स्नान) करते हैं, क्योंकि हमारा स्वभाव गन्दगी में बने रहना पसन्द नहीं करता। या यूं कहें कि गंदगी में बने रहना हमारे स्वभाव के अनुकूल नहीं। लेकिन सूअरों के बारे में क्या कहेंगे? गंदगी में बने रहना उन्हें बहुत अच्छा लगता है। यदि आप उन्हें नहला-धुलाकर चमका भी दें तब भी मौका पाते ही वे पुनः कीचड़ में ही लेटेंगे। क्यों? उनके स्वभाव का यही तकाजा है। जैसे हम गंदगी नहीं पसन्द करते उसी प्रकार परमेश्वर की संतान होने पर पाप में बने रहना नापसन्द करते हैं। बेशक, यह सम्भव है कि हम फिसलेंगे, लुढ़केंगे या विद्रोही (कठोर मन) होंगे, लेकिन अपनी शारीरिकता (पाप) में बने रहने से खुश नहीं होंगे, क्योंकि ऐसा करना हमारे (नये) स्वभाव के विपरीत होगा। अविश्वासीजन पाप-प्रेमी होता है। क्योंकि यह उसके स्वभाव का अंग है। तो हम विश्वासीजन उन बातों में क्यों लिप्त हों जिनके लिए संसार का एक दिन न्याय होगा?

प्रभु के पास आने पर हमें ऐसा भिन्न (नया) स्वभाव मिला है कि अब हम अविश्वासियों के समान पाप में मजा नहीं लेना चाहते। एक दिन हम भी अंधकार की संतान थे और सत्य से अज्ञान (अनजान)। लेकिन अब हम **ज्योति** की संतान हो चुके हैं। परमेश्वर के वचन की सच्चाईयों को पवित्र आत्मा ने हम पर प्रकट किया है, और अब हम यह जानते हैं कि क्या सही (उचित) है। अतः सत्य से अपरिचित एवं अंधकार में चलने वालों की तरह कार्य-व्यवहार हमारे लिए अशोभनीय एवं गलत है। पवित्र आत्मा पर आश्रित जीवन जीने पर, वह हमें सही, भला एवं परमेश्वर को प्रिय कार्य-व्यवहार करने की क्षमता प्रदान करता है। दसवें पद में "प्रभु को पसन्द बातों" को जानने-सीखने के लिए प्रोत्साहित किया गया है। प्रभु को क्या पसन्द है? "विश्वास" बगैर परमेश्वर को प्रसन्न करना असम्भव है (इब्रा0 11:6)। परमेश्वर से सहमत हुए बगैर और उस पर आश्रित हुए बगैर उसे प्रसन्न करना सम्भव नहीं है।

*"अन्धकार के निष्फल कामों में सहभागी न हो वरन् इन कामों को प्रकट करो। क्योंकि जो काम गुप्त में उनके द्वारा किए जाते हैं, उनकी चर्चा भी लज्जा की बात है। पर जितने कार्य प्रकट किए जाते हैं वे सब ज्योति से प्रकट होते हैं, क्योंकि जो सब कुछ को प्रकट करता है वह ज्योति है। इस कारण वह कहता है, 'हे सोने वाले, जाग और मृतकों में से जी उठ, तो मसीह की ज्योति तुम पर चमकेगी'" (इफि0 5:11-14)। अब पौलुस यह कहता है कि विश्वासियों को अविश्वासियों के बुरे कामों में शामिल नहीं होने के अलावा ऐसे बुरे कामों को **प्रकट** भी करना है। कैसे **प्रकट** करना है? अपने जीवन आचरण द्वारा। जब हम पवित्र आत्मा पर आश्रित*

जीवन व्यतीत करेंगे तब हमारे जीवन-व्यवहार द्वारा पवित्र आत्मा के फल प्रकट (उत्पन्न) होंगे (गला0 5:22-23)। हमारे जीवन में पवित्र आत्मा के इन फलों को देखने के द्वारा दूसरे लोगों में पाप के प्रति कायलियत पैदा हो सकती है। इस प्रकार अपने पापीपन को पहचानने के द्वारा कुछ लोग अपने उद्धार के लिए प्रभु की ओर फिरेंगे। याद कीजिए कि कैन ने अपने भाई हाबिल का कत्ल क्यों किया था? क्या हाबिल ने कैन के पास जाकर उससे यह कहा था कि वह (कैन) परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन कर रहा है? नहीं। हाबिल द्वारा सही कार्य करना (सही मार्ग पर चलना) मात्र, कैन को उसकी बुराई दर्शाने के लिए पर्याप्त रहा। पवित्र आत्मा पर आश्रित जीवन व्यतीत करने पर वह हमारे जीवन को भी इसी प्रकार इस्तेमाल करता है। क्या किसी नये इलाके में सेवा-कार्य करने जाने वाले मिशनरी वहाँ पहुंचते ही सब लोगों से यह कहने लगते हैं कि वे सब पापी हैं और उनके सब धरम-करम भी? नहीं। वे सिर्फ परमेश्वर के वचन की शिक्षा देते हैं। तब सुनने वालों के मन में पवित्र आत्मा स्वयं उनकी बुराईयों के प्रति कायलियत पैदा करता है। अतः हमें हरेक व्यक्ति की बुराईयों (पाप) दर्शाने की जरूरत नहीं है। जब हम पवित्र आत्मा पर आश्रित जीवन आचरण करेंगे, तब वह हमारे कार्य-व्यवहार का इस्तेमाल करके दूसरों के मन में अपनी भली भावती इच्छा पूरी करेगा।

“दाखरस पीकर मतवाले न बनो, क्योंकि इससे लुचपन होता है, परन्तु आत्मा से परिपूर्ण होते जाओ” (इफि0 5:18)। यहाँ पौलुस यह कहता है कि प्रत्येक विश्वासी को पवित्र आत्मा की अधीनता एवं नियंत्रण में रहना चाहिए। इसके बाईसवें पद से वह विश्वासियों (पति-पत्नी, सेवक-स्वामी और माता-पिता एवं बच्चों) के मध्य आपसी सम्बन्धों के बारे में लिखता है। अतः आगे के पदों में वर्णित विभिन्न पारस्परिक (एवं पारिवारिक) सम्बन्धों के बारे में विचार करते समय इस अट्टारहवें पद की सच्चाई को नहीं भूलना चाहिए। क्योंकि परस्पर सम्बन्धों के प्रति हमारा सही रुख तभी होगा जबकि हमारा आचरण पवित्र आत्मा की अधीनता व नियंत्रण में होगा। बाईसवें पद (पति-पत्नी सम्बन्धी विचारों) पर ध्यान देने से पहले बाइबल में वर्णित ‘सबसे प्रथम पति-पत्नी’ के बारे में सोचना सहायक साबित हो सकता है। विवाह की शुरुआत कहाँ हुई? विवाह (प्रथा का विचार) किसकी देन है? पवित्र बाइबल के निम्नलिखित पदों पर ध्यान दें : “और यहोवा परमेश्वर भूमि में से प्रत्येक जाति के वन-पशु और आकाश के सब प्रकार के पक्षियों को रचकर आदम के पास ले आया कि देखे कि वह उनका क्या नाम रखता है; और आदम ने प्रत्येक जीवित प्राणी को जो नाम दिया, वही उसका नाम हो गया। और आदम ने सब घरेलू पशुओं, आकाश के पक्षियों और भूमि के सब वन-पशु के नाम रखे, पर आदम के योग्य कोई सहायक न मिला” (उत्प0 2:19-20)।

सृष्टि के आरम्भ में प्रभु परमेश्वर ने आदम से सभी पशुओं का नाम देने के लिए क्यों कहा? संभवतः स्वयं आदम की किसी आवश्यकता को दर्शाने हेतु। शायद आदम को अपने लिए किसी साथी की आवश्यकता का तब तक ज्ञान नहीं हुआ जब तक कि उसने पशुओं को नाम देने का काम नहीं किया, क्योंकि ऐसा करते समय उसने यह देखा कि उनमें से प्रत्येक नर व मादा रूपी जोड़े में थे। आइए अब यह देखें कि परमेश्वर ने उसके (आदम के) लिए पत्नी का प्रबन्ध कैसे किया : *“अतः यहोवा परमेश्वर ने आदम को गहरी नींद में डाल दिया, और जब वह सो रहा था तो उसने उसकी एक पसली निकाल कर उसके स्थान में मांस भर दिया। तब यहोवा परमेश्वर, आदम में से निकाली गई उस पसली से एक स्त्री की रचना करके, उसे आदम के पास ले आया”* (उत्प0 2:21-22) ध्यान दें कि इन दोनों पदों के अनुसार परमेश्वर ने पाँच काम किये : आदम को नींद में डाल दिया, उसकी एक पसली निकाली, उसके स्थान पर माँस भर दिया, एक स्त्री को रचा और उसे आदम के पास ले आया।

आदम को गहरी नींद में डाल दिया : प्रभु परमेश्वर को आदम से सहायता लेने की जरूरत नहीं थी। यह परमेश्वर का निर्णय था कि आदम की पत्नी कैसी होनी चाहिए। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि आदम अपनी सलाह देने के लिए जागृत (अनिद्रा की अवस्था में) नहीं था।

उसकी एक पसली निकाली : क्यों पसली ही निकाली गई? एक कान, एक पैर अथवा एक बाल क्यों नहीं? पसली आदमी की देह

का एक पक्ष (भाग) है। हव्वा को आदम का "सिर" नहीं होना था, और न ही उसे आदम के नीचे होना था। उसे तो आदम के समान उसका एक सहायक होना था। **पसली** आदम के हृदय के निकट का एक अंग था। आदम के प्रेमपूर्ण देखरेख में हव्वा को भी उसके दिल के करीब रखा जाना था। इसके अलावा **पसली** आदम के बाजू (बांह) के नीचे का अंग था, जो इस बात का प्रतीक था कि हव्वा को आदम की संरक्षा की जरूरत रहेगी जैसे कि मुर्गी अपने बच्चों को अपने पंखों के नीचे सुरक्षा या संरक्षा प्रदान करती है।

उस पसली के स्थान पर मांस भर दिया : वर्तमान समय की शल्य-क्रिया (सर्जरी) के बाद घाव ठीक होने में कुछ समय लगता है। परमेश्वर द्वारा किए गये इस आपरेशन के घाव को ठीक होने में कोई समय नहीं लगा।

एक स्त्री की रचना की : वह स्त्री पूर्णतः परमेश्वर की कृति (रचना) थी।

उसे आदम के पास ले आया : परम प्रधान परमेश्वर यह चाहता था कि आदम यह समझे कि वह स्त्री परमेश्वर की ओर से आदम के लिए एक उपहार (वरदान) है। इस प्रकार विवाह का संस्थापन प्रभु परमेश्वर ने किया। विवाह (प्रथा) परमेश्वर की देन है, किसी मनुष्य की खोज का परिणाम नहीं।

"हे पत्नियों, अपने अपने पति के ऐसे अधीन रहो जैसे कि प्रभु के अधीन हो। क्योंकि पति तो पत्नी का सिर है, जिस प्रकार मसीह भी कलीसिया का सिर है और स्वयं देह का उद्धारकर्ता है। पर जैसे कलीसिया मसीह के अधीन है, वैसे ही पत्नियां भी हर बात

में अपने अपने पति के अधीन रहें” (इफि० 5:22-24)। अब पौलुस कहता है कि पत्नियों को अपने पति के अधीन रहना चाहिए, जैसे कि प्रभु के अधीन हों। प्रभु परमेश्वर ने पुरुष को स्त्री का सिर निर्धारित किया है (प० कुरि० 11:3) और उसकी (स्त्री की) आवश्यकताओं को पूरा करने (भरण-पोषण करने), देखभाल करने तथा उसकी संरक्षा करने की जिम्मेदारी दी है (पुरुष को)। इसलिए स्त्री को अपने ऊपर परमेश्वर द्वारा निर्धारित अधिकार के अधीन रहना उचित है। चौबीसवां पद स्पष्ट कहता है कि स्त्री को “हर बात” में अपने पति की अधीनता माननी चाहिए। लेकिन यदि पति की बात परमेश्वर के वचन के विपरीत है तो? इस सम्बन्ध में “प्रेरितों के काम” की एक घटना पर ध्यान दें। एक बार फरीसियों ने प्रेरितों को मसीह का प्रचार करने से मना किया (प्रेरि० 5:28-29)। इसके प्रति प्रभु के चेलों की क्या प्रतिक्रिया थी? प्रेरितों के काम के उपर्युक्त पदों को ध्यानपूर्वक पढ़ें। उत्तर स्पष्ट है। इसी प्रकार पत्नियों को भी परमेश्वर के वचन के विपरीत जाने वाली बातों के सिवाय शेष “हर बात” में अपने पति के अधीन रहना चाहिए।

“हे पतियों, अपनी अपनी पत्नी से प्रेम करो जैसा मसीह ने भी कलीसिया से प्रेम किया और अपने आपको उसके लिए दे दिया कि उसको वचन के द्वारा जल के स्नान से शुद्ध करके पवित्र बनाए और उसे एक ऐसी महिमायुक्त कलीसिया बनाकर प्रस्तुत करे, जिसमें न कलंक, न झुर्री, न इनके समान कुछ हो, वरन् पवित्र और निर्दोष हो। इसी प्रकार उचित है कि पति भी अपनी पत्नी से अपनी देह के समान प्रेम करे। जो अपनी पत्नी से प्रेम करता है वह स्वयं

अपने आप से प्रेम करता है। कोई अपनी देह से घृणा नहीं करता, वरन् उसका पालन-पोषण करता है, जैसे कि मसीह भी कलीसिया का पालन-पोषण करता है, क्योंकि हम उसकी देह के अंग हैं” (इफि० 5:25-30)। संत पौलुस यह आदेश देता है कि पति अपनी पत्नी को उसी प्रकार प्रेम करे जैसे कि मसीह अपनी मंडली (दुल्हन) को प्रेम करता है। आदम-हव्वा की कहानी को पुनः स्मरण कीजिए। स्त्री (हव्वा) को पुरुष (आदम) की पसली लेकर रचा गया; अतएव पत्नी को प्रेमपूर्ण देखरेख के साथ हमेशा अपने दिल के करीब रखना चाहिए। नारी की रचना करके जब परमेश्वर उसे आदम के पास लाया तो हव्वा के प्रति आदम की प्रतिक्रिया अर्थात् उत्साहपूर्ण स्वागत, स्वीकार्यता और अपनापन (अपनेपन) पर ध्यान दीजिए (उत्प० 2:23)। यहाँ इस तथ्य पर भी विचार कीजिए कि क्या इस हार्दिक स्वागत एवं ग्रहणयोग्यता के लिए हव्वा ने कुछ अर्जित किया था? नहीं। आदम किसको पहले से जानता था – परमेश्वर को या हव्वा को? परमेश्वर को। उस क्षण से पूर्व हव्वा को तो उसने कभी देखा ही नहीं था। अतः हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आदम द्वारा हव्वा को ग्रहण करना, परमेश्वर के साथ आदम के सम्बन्ध पर आधारित था। आदम परमेश्वर के प्रेम पर पूरा भरोसा रखता था और यह समझ रहा था कि परमेश्वर उसे वही देगा जो उसके लिए भला होगा। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि हव्वा के प्रस्तुत होते ही आदम ने उसे सहर्ष ग्रहण किया। इसी प्रकार हमें भी अपनी पत्नी को उसके कार्य-व्यवहार के आधार पर नहीं, बल्कि इस आधार पर ग्रहण करना चाहिए और उससे प्रेम करना चाहिए कि वह हमारे प्रेमी परमेश्वर की देन है।

अब सवाल यह उठता है कि पौलुस के निर्देश के अनुसार पत्नियाँ कैसे "हर बात" में अपने पति की अधीनता व आदर में रह सकती हैं; और पति लोग अपनी-अपनी पत्नी को पौलुस की शिक्षा के अनुसार प्रेम व ग्रहणशीलता कैसे प्रदान कर सकते हैं? इफिसियों के इस पांचवे अध्याय के अट्ठारहवें पद की बात को स्मरण करें "आत्मा से परिपूर्ण" होते रहने के द्वारा। जब हम इस आध्यात्मिक सच्चाई पर विश्वास करते हैं कि हमारी शारीरिकता (पुराना स्वभाव) मसीह के साथ क्रूस पर चढ़ायी जा चुकी है, और हमें एक नया स्वभाव प्रदान किया गया है, और हमें पवित्र आत्मा पर आश्रित जीवन व्यतीत करना है, तब हम परमेश्वर के वचन की आज्ञा में अपने नये स्वभाव के अनुसार जीवन जीने की योग्यता पाएंगे। शारीरिकता (पाप-स्वभाव) के अधीन आचरण करने वाली स्त्री अपने पति की अधीनता में जीना पसन्द नहीं करेगी। वह तो उसकी गलतियों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करेगी और उसके अधिकार का विरोध करेगी। इसके विपरीत पवित्र आत्मा के चलाए चलने वाली महिला का ध्यान, मन एवं भरोसा परमेश्वर पर केन्द्रित रहेगा, न कि अपने पति (की गलतियों) पर (यशा0 26:3)। वह अपने प्रति परमेश्वर के प्रेम पर भरोसा रखती है और पति की गलती व दोष को भी परमेश्वर द्वारा भलाई में बदल दिए जाने पर विश्वास करती है। अतः वह अपने पति के अधीन प्रेमपूर्ण आज्ञाकारिता का व्यवहार करने को स्वतंत्र रहती है।

इसके बाद पति को यह आज्ञा दी गयी है कि जैसे मसीह अपनी कलीसिया से प्रेम रखता है, वैसे वह भी अपनी पत्नी के साथ

प्रेम रखे। शारीरिकता के अधीन आचरण करने वाले पति के लिए ऐसा करना असम्भव है, क्योंकि शारीरिकता के अनुसार चलने वाला व्यक्ति सिर्फ अपना और अपनी जरूरतों का ख्याल करता है। वह दूसरों की जरूरतों की चिंता नहीं करता, यहाँ तक कि अपनी पत्नी की जरूरतों का भी ख्याल नहीं रखता। परन्तु (पवित्र) आत्मा के चलाए चलने वाला व्यक्ति दूसरों की आवश्यकताओं की चिंता करता है और उन्हें अपने से ज्यादा महत्व देता है (फिलि0 2:3-4)। ऐसा पति इस बात का ध्यान रखेगा कि उसकी पत्नी की सारी आवश्यकताएं पूरी हों। हमें यह नहीं भूलना है कि हव्वा को आदम के शरीर से एक अंग निकालकर रचा गया था, अर्थात् वह आदम की देह की एक हिस्सा थी। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि पौलुस इफिसियों के पांचवे अध्याय में पति लोगों से यह कहता है कि वे अपनी-अपनी पत्नी की ऐसी देखभाल व उससे ऐसा प्रेम करें जैसे कि "अपनी देह" की देखभाल करते हैं (इफि0 5:28-31)। मान लीजिए कि आपके हाथ में चोट के कारण कोई घाव हो गया है। क्या आप अपने शरीर के इस अंग से यह कहेंगे कि 'मैं तुम्हारी चिन्ता नहीं करता, तुम तो वैसे भी कोई खास कौशल से काम करने में तेज नहीं हो? इसलिए मैं तुम्हारी देखरेख नहीं करता चाहे तो ठीक हो जाओ या नहीं।' नहीं, आप ऐसा नहीं कहेंगे। आपके हाथ की चोट का दर्द पूरे शरीर को प्रभावित करता है। जरा सोचिए, कभी-कभी जब हमारी पत्नी हमारी इच्छानुसार कार्य-व्यवहार नहीं करती तो हम उसके साथ कैसा व्यवहार करते हैं? हम गुस्सा हो जाते हैं और उसके प्रति ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे कि वह हमारी अपनी नहीं है। इतना ही नहीं, मौका पाते ही बदला लेना चाहते हैं।

लेकिन पौलुस यहाँ यह सिखाता है कि हमें अपनी पत्नी की प्रेमपूर्ण देखभाल इसलिए नहीं करनी है कि वह सदैव सब कुछ सही करती है, बल्कि हमें अपनी पत्नी की प्रेमपूर्ण देखभाल इसलिए करनी है क्योंकि वह हमारी देह का अंग है और परमेश्वर की देन है।

“हे बालकों, प्रभु में अपने माता-पिता की आज्ञा मानो, क्योंकि यह उचित है। अपने माता-पिता का आदर कर – यह पहली आज्ञा है। जिसके साथ प्रतिज्ञा भी है – जिससे कि तेरा भला हो और तू पृथ्वी पर बहुत दिन जीवित रहे” (इफि0 6:1-3)। विश्वासी बाल-बच्चों को भी पवित्र आत्मा के प्रभाव एवं नियंत्रण में जीवन-आचरण करना चाहिए। जो बच्चे पवित्र आत्मा के चलाए चलेंगे, वे अपने माता-पिता का आदर-मान व आज्ञा-पालन करेंगे। परन्तु शारीरिकता के अधीन चलने वाले बच्चे अनाज्ञाकारी होंगे। चूँकि परमेश्वर का वचन बच्चों को माता-पिता की आज्ञा मानना सिखाता है, इसलिए अनाज्ञाकारी बच्चे परमेश्वर के प्रति अवज्ञा दर्शाते हैं। यहाँ यह भी ध्यान दें कि माता-पिता की आज्ञा का पालन करना मात्र ही पर्याप्त नहीं है, यह आज्ञाकारिता भली भावना (नीयत) से होनी चाहिए (“तू अपने पिता और अपनी माता का आदर करना”)।

ध्यान दें कि पौलुस यहाँ स्मरण कराता है कि “माता-पिता का आदर” करने सम्बन्धी इस आज्ञा के साथ एक वायदा भी जुड़ा है: “जिससे कि तेरा भला हो और तू पृथ्वी पर बहुत दिन जीवित रहे”। यह कैसे? माता-पिता की अवज्ञा एवं अनादर करने वाले बच्चों का माता-पिता के साथ सम्बन्ध खराब होता है और इस

प्रकार ऐसे बच्चों का जीवन (भलाई भरा होने के बजाय) कठिनाईपूर्ण या कठोर होता जाता है (नीति0 13:15)। इस आज्ञा से जुड़े वायदे में "पृथ्वी पर बहुत दिन जीवित" रहने (दीर्घायु) की भी बात है। यदि कोई बच्चा अपने माता-पिता की अवज्ञा एवं अनादर करते हुए उनकी समझदारीपूर्ण बातों को नहीं मानता और उनके सुधारात्मक परामर्श के विरुद्ध कार्य-व्यवहार करता है तो उसके स्वाभाविक दुष्परिणाम हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, माता-पिता के बार-बार मना करने व समझाने के बावजूद किसी बच्चे का किसी खतरनाक पेड़ की डाली पर चढ़ना और डाली के टूटने के कारण उस बच्चे के सिर में गम्भीर चोट लगना और अन्ततः उसकी मृत्यु (नीति0 30:17)।

"पिताओं, अपने बच्चों को क्रोध न दिलाओ, वरन् प्रभु की शिक्षा और अनुशासन में उनका पालन-पोषण करो" (इफि0 6:4)। अब माता पिता को सम्बोधित करते हुए पौलुस उन्हें यह सलाह देता है कि बच्चों का "प्रभु की शिक्षा और अनुशासन" में पालन-पोषण करने हेतु पवित्र आत्मा की परिपूर्णता अत्यावश्यक है। यदि ऐसा नहीं है तो बच्चों के प्रति हम शारीरिकता में आचरण करेंगे जिससे उनकी शारीरिकता उकसायी जाएगी और इस प्रकार आपसी क्रोध एवं कड़वाहट का ही विकास होगा। अपने बच्चों के प्रति अति संरक्षात्मक रवैया अपनाना और उन्हें असफल होने का अवसर नहीं देना; उनके प्रति धीरज नहीं रखना और उनसे यह करने या वह करने की मांग करना; और उनसे प्रेमपूर्ण व सावधानीपूर्ण बोली में बात करने के बजाय कठोरता एवं असावधानी से बात करना; उन्हें शर्मिन्दा करना

व धमकी देना तथा बहुत कठोर सजा देना "बच्चों में क्रोध" को उकसाता है, न कि "प्रेम और भले कार्यों" को (इब्रा0 10:24)। परमेश्वर के अनुग्रह एवं ज्ञान में विकास एवं परिपक्वता की ओर अग्रसर माता-पिता, पवित्र आत्मा द्वारा मसीह के जीवन से परिपूर्ण होकर ऐसी क्षमता पाते हैं कि अपने बच्चों के लिए एक अच्छा उदाहरण होते हैं। ऐसे माता-पिता को पवित्र आत्मा ही परमेश्वर के वचन की सच्चाईयों से अपने बच्चों को सुशिक्षित एवं प्रोत्साहित करने हेतु सामर्थ्य एवं योग्यता प्रदान करता है। इतना ही नहीं, जब माता-पिता पवित्र आत्मा के चलाए जीवन व्यतीत करते हैं तो उनका जीवन-उदाहरण उनके बच्चों को भी शारीरिकता के बजाय पवित्र आत्मा के चलाए चलने की शिक्षा, प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करता है। इसके विपरीत जब हम शारीरिकता के चलाए चलते हैं तो अपने बच्चों को भी शारीरिकता के चलाए चलने को उकसाते हैं (यूह0 3:6)।

"हे दासों, जैसे तुम मसीह की आज्ञा मानते हो, उसी प्रकार डरते और कांपते हुए, निष्कपट हृदय से उनकी भी आज्ञा मानो जो शारीरिक रूप से तुम्हारे स्वामी हैं। मनुष्यों को प्रसन्न करने वालों के समान दिखावटी सेवा न करो, पर मसीह के दासों के सदृश हृदय से परमेश्वर की इच्छा पूरी करो। इस सेवा को मनुष्य की नहीं पर प्रभु की जानकर सुइच्छा से करो, यह जानते हुए कि चाहे दास हो या स्वतंत्र, जो जैसा अच्छा कार्य करेगा, वह प्रभु से वैसा ही प्रतिफल पाएगा" (इफि0 6: 5-8)। जिस समय पौलुस ने इफिसुस की कलीसिया को अपना यह पत्र लिखा, उस जमाने में दास-प्रथा

का प्रचलन था। अतः उसने दास व स्वामी शब्दों का प्रयोग किया है। आजकल प्रायः नियोक्ता (इम्प्लॉयर) और कर्मचारी की बात की जाती है अर्थात् नौकरी देने वाले और नौकरी करने वाले की। यहाँ पौलुस का संदेश यह सिखाता है कि पवित्र आत्मा से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाला कर्मचारी अपने नियोक्ता (मालिक) के यहाँ ऐसे काम (सेवा या नौकरी) करेगा जैसे कि परमेश्वर के लिए काम कर रहा हो। वह सिर्फ अपने मालिक या अधिकारी को दिखाने के लिए ही ईमानदारी, वफादारी एवं परिश्रम से काम नहीं करेगा, बल्कि स्वयं को परमेश्वर का दास समझते हुए अपने नियोक्ता के लिए पूरे मन से कार्य करेगा (जैसे कि मसीह के लिए कर रहा हो)। इसके विपरीत शारीरिकता के अनुसार आचरण करने वाला कर्मचारी अपना काम ईमानदारी के साथ नहीं करेगा। वह तो सिर्फ अपने फायदे और स्वार्थ की चिन्ता करेगा। वह अपने नियोक्ता (मालिक) की भलाई और अपनी नौकरी के प्रति वफादारी की बात नहीं सोचेगा। पौलुस कितनी सुन्दर बात कहता है कि हमारा वास्तविक (अमिट) पुरस्कार हमारे इहलौकिक नियोक्ता से नहीं, बल्कि परमेश्वर से मिलेगा। अतः हमें अपने नियोक्ता पर नजर रखकर नहीं, बल्कि स्वर्गिक स्वामी पर दृष्टि लगाकर अपनी नौकरी करनी चाहिए।

“हे स्वामियों, तुम भी उनके साथ ऐसा ही व्यवहार करो। यह जानते हुए कि तुम दोनों का स्वामी स्वर्ग में है और वह निष्पक्ष है। धमकियां देना छोड़ो” (इफि0 6:9)। इसके बाद पौलुस ने नियोक्ताओं को सम्बोधित किया है कि उन्हें अपने कर्मचारियों के प्रति प्रेमपूर्ण, पक्षपातरहित एवं भलाई का व्यवहार करना चाहिए।

मालिक, अधिकारी अथवा नियोक्ताओं को यह नहीं भूलना चाहिए कि परमेश्वर की दृष्टि में वे अपने कर्मचारियों से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। परमेश्वर हम सबको एक नजर से देखता है। चूँकि प्रभु परमेश्वर कर्मचारियों से भी प्रेम रखता है, इसलिए नियोक्ताओं को उनके साथ अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिए।

प्रेरित पौलुस ने जब यह पत्र लिखा तब वह रोम में एक कैदी था। वहाँ कैदियों के पास रोमी सैनिक पहरा देते थे। रोमी सैनिकों के पास कुछ खास प्रकार के अस्त्र-शस्त्र होते थे जिन्हें रणक्षेत्र में जाने से पूर्व बड़ी सावधानीपूर्वक पहनना (धारण करना) पड़ता था। कमर में **कटिबन्ध** (बेल्ट) जो कि अन्य हथियार-पोशाक को मिला कर एक स्थान पर मजबूती से बांधे रहता था। इसके बाद **कवच** (या झिलम) सैनिकों के सीने व पीठ की रक्षा हेतु पहना जाता था और कटिबन्ध से बंधा रहता था। तत्पश्चात् **जूते** को पहिनते थे। उनके जूते जानवरों की खाल के बने होते थे और उन जूतों के तले (सोल) कीलों से जड़े होते थे। इसके अलावा उन सैनिकों को अपनी ढाल, टोप और तलवार को भी धारण करना पड़ता था।

अब हम इफिसियों की पत्री के छठवें अध्याय के जिन पदों का अध्ययन करेंगे, उनमें पौलुस ने विश्वासियों को मसीह के सैनिक के समान दर्शाया है, जिन्हें एक खास शत्रु का सामना करना है। जैसे रोमी सैनिकों के पास रणक्षेत्र के लिए विशिष्ट अस्त्र-शस्त्र (हथियार-पोशाक) थे, उसी प्रकार प्रभु परमेश्वर ने अपने विश्वासियों को भी आध्यात्मिक अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए हैं।

“अतः प्रभु और उसके सामर्थ्य की शक्ति में बलवान बनो। परमेश्वर के सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र धारण करो जिस से तुम शैतान की

युक्तियों का दृढतापूर्वक सामना कर सको। हमारा संघर्ष तो मांस और लहू से नहीं वरन प्रधानों, अधिकारियों, अन्धकार की सांसारिक शक्तियों तथा दुष्टता की उन आत्मिक सेनाओं से है जो आकाश में हैं। इसलिए परमेश्वर के समस्त अस्त्र-शस्त्र धारण करो, जिस से तुम बुरे दिन में सामना कर सको और सब कुछ पूरा करके स्थिर रह सको” (इफि० 6:10-13)। आजकल के मसीही विश्वासी भी उसी प्रकार की परिस्थिति में हैं जिस प्रकार की परिस्थिति में मिस्र की गुलामी से छुड़ाए जाने के बाद इस्राएली लोग थे। वे इस्राएली मिस्र की शासन-सत्ता एवं अधिकार से मुक्त हो चुके थे, लेकिन उन्हें फिर पकड़ने के लिए फिरौन उनका पीछा करते हुए लाल सागर की ओर बढ़ रहा था। हम भी शैतान की सत्ता एवं उसके अधिकार से आजाद कर दिए गये हैं, लेकिन हम पर अपना नियंत्रण रखने के उद्देश्य से शैतान अपने छल-कपट से हमें धोखा देने में लगा रहता है। शैतान हमें पुनः अपना गुलाम नहीं बना सकता परन्तु अपने धोखे के द्वारा हमारे मस्तिष्क, इच्छा और मनोवेग को प्रभावित कर सकता है और अनन्तः हमें अपने जाल में फंसा भी (नियंत्रित भी कर) सकता है। रोमियों के छठवें अध्याय की सच्चाई पर विश्वास करने से हमें दूर रखना, शैतान की एक सबसे बड़ी चालबाजी और धोखाधड़ी है; क्योंकि उस सच्चाई पर विश्वास करने वाले शारीरिकता के चलाए चलने से दूर रहते हैं। जब हम शारीरिकता में होंगे तो शैतान के लिए यह आसान होगा कि हमारे ध्यान-मन को सांसारिक प्रलोभनों की ओर आकर्षित करके, हमें परमेश्वर से दूर भटकाए। स्मरण रहे कि जैसे मिस्र से मुक्त हुए वे इस्राएली स्वयं अपनी शक्ति में अपने आपको मिस्रियों से सुरक्षित रखने में असमर्थ

थे, उसी प्रकार हम भी शैतान के प्रलोभन, धोखे और दोषारोपण से अपने आपको बचाने में असमर्थ हैं। इसीलिए पौलुस यह लिखता है : "अतः प्रभु और उसकी सामर्थ्य की शक्ति में बलवान बनो। परमेश्वर के सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्र धारण करो"। प्रभु के सामर्थ्य की शक्ति में बलवान होना तथा परमेश्वर के समस्त अस्त्र-शस्त्र धारण करना क्यों महत्वपूर्ण हैं? पौलुस स्वयं उपर्युक्त ग्यारहवें पद में जवाब प्रस्तुत करता है: "जिससे तुम शैतान की युक्तियों का दृढ़तापूर्वक सामना कर सको"। तब पौलुस यह भी बताता है कि यह संघर्ष बिल्कुल भिन्न प्रकार का (अभूतपूर्व) संघर्ष है। "हमारा संघर्ष तो मांस और लहू से नहीं वरन् प्रधानों, अधिकारियों, अंधकार की सांसारिक शक्तियों तथा दुष्टता की उन आत्मिक सेनाओं से है जो आकाश में हैं"। ऐसे दुश्मन का मुकाबला (सामना) हम नहीं कर सकते। जिससे हमारा संघर्ष है उसे तो हम देख भी नहीं सकते (सामना करने की बात तो अलग है)। इसीलिए प्रभु के सामर्थ्य की शक्ति में बलवान होना तथा उसके समस्त अस्त्र-शस्त्र धारण करना हमारे लिए अत्यावश्यक (महत्वपूर्ण) है। ग्यारहवें और तेरहवें पदों में पौलुस द्वारा प्रयुक्त "सामना करना खड़े रहना अथवा स्थिर रहना" शब्दों पर ध्यान दें: "परमेश्वर के समस्त अस्त्र-शस्त्र धारण करो जिससे तुम शैतान की युक्तियों का दृढ़तापूर्वक सामना कर सको"... "इसलिए परमेश्वर के समस्त अस्त्र-शस्त्र धारण करो जिससे कि तुम बुरे दिन में सामना कर सको और सब कुछ पूरा करके स्थिर रह सको"। यूनानी भाषा में "सामना" करने के लिए जो मूल शब्द प्रयोग किया गया है उसका भावार्थ यह है कि "जीत हासिल की जा चुकी है"। अब हमें प्रदान की गई 'जीत की जगह' (विजय-स्थल)

पर सिर्फ सामना करके दृढ़, डटे, अडिग, स्थिर व खड़े रहना है। लेकिन कैसे? पतरस अपनी पहली पत्री में यह कहता है : “संयमी और सचेत रहो। तुम्हारा शत्रु शैतान गरजने वाले सिंह की भांति इस ताक में रहता है कि किसको फाड़ खाए। विश्वास में दृढ़ रहकर उसका विरोध (या सामना) करो” (प0 पत0 5:8-9)। तो शैतान की युक्तियों के विरुद्ध हम विजय-स्थल पर कैसे खड़ा रह सकते हैं? इस विश्वास की दृढ़ता में कि वह एक पराजित शत्रु है। ध्यान दें कि पौलुस यह नहीं सिखाता कि इन अस्त्र-शस्त्रों को धारण करो और जाकर शैतान पर विजय प्राप्त करो। हे विश्वासियों, अब हमें शैतान पर विजय प्राप्त नहीं करना है। क्यों? क्योंकि यह अद्वितीय कार्य (विजय) मसीह यीशु कर चुका है। हमें तो इस सच्चाई पर सिर्फ विश्वास-विश्राम करना है कि हमारे बदले यह विजय मसीह ने पहले से ही हासिल कर रखी है। हमें तो ‘मसीह की विजय’ में विश्वास द्वारा छिपना जरूरी है। तो हमारे लिए परमेश्वर-प्रदत्त एकमात्र (रक्षा) कवच क्या है? हमारा प्रभु **यीशु मसीह**। हाँ, शैतान को तथा उसकी दुष्टात्माओं को प्रभु यीशु मसीह पराजित कर चुका है और वे हमारे प्रभु के अधिकार के नीचे (अधीन) हैं। अतः हमें अपने आपको **मसीह** में छिपाना अत्यावश्यक है। हमारे लिए, परमेश्वर की ओर से दिया गया (रक्षा) **कवच** वही है।

“अतः सत्य से अपनी कमर कस कर और धार्मिकता की झिलम पहिन कर... स्थिर रहो (इफि0 6:14)। इस प्रसंग में यूहन्ना के चौदहवें अध्याय का छठवां पद याद आता है जिसमें प्रभु यीशु का यह कथन पाया जाता है : “मार्ग, सत्य और जीवन मैं ही हूँ। बिना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुंच सकता”। प्रभु यीशु के इन

शब्दों पर ध्यान दें। उसने यह नहीं कहा कि 'मैं तुम्हें सत्य दिखाऊँगा या सत्य सिखाऊँगा'। बल्कि उसने यह कहा : "सत्य मैं ही हूँ"। अतः "सत्य से अपनी कमर कस कर" जीवन व्यतीत करने वालों के लिए प्रभु यीशु मसीह को पहिन लेना (धारण करना) जरूरी है। अर्थात् मसीह के बारे में सत्य का ज्ञान एवं समझ अत्यावश्यक है : वह कौन है? हमारे बदले (वास्ते) उसने क्या किया है? उसने हमें क्या प्रदान किया है? उसके साथ गहरी एवं स्थायी संगति आवश्यक है। उसे जानना-पहचानना जरूरी है। मसीह का यह ज्ञानरूपी बेल्ट (कमरबन्द) शेष सभी अस्त्र-शस्त्रों को समुचित तरीके से संभाले (स्थिर) रखेगा। इसके बाद धार्मिकता की झिलम का जिक्र आया है। पहला कुरिन्थियों की पत्रों के पहले अध्याय के तीसवें पद में यह बताया गया है कि मसीह हमारी धार्मिकता है। अतएवं धार्मिकता की झिलम पहनने के लिए "नये मनुष्यत्व को पहिनना" (इफि0 4:24) आवश्यक है – अर्थात् प्रभु यीशु मसीह को धारण करना।

"पैरों में मेल के सुसमाचार की तैयारी के जूते पहिन कर स्थिर रहो" (इफि0 6:15)। पहला कुरिन्थियों की पुस्तक के पन्द्रहवें अध्याय के पहले पाँच पदों के अनुसार "मसीह की मृत्यु एवं उसका पुनरुत्थान" ही सुसमाचार है। अतः "पैरों में मेल के सुसमाचार की तैयारी" के लिए भी प्रभु यीशु को ही धारण करना है। दुनिया और शैतान चाहे जो कुछ कहें, परमेश्वर के साथ हमारा मेल हो गया है; क्योंकि मसीह यीशु हमारे पापों के बदले मरा (बलि हुआ) और मृतकों में से पुनः जीवित हो गया। अब हम परमेश्वर की शांति में स्थिर (अटल) रह सकते हैं। हाँ, शैतान की पूरी कोशिश रहती है

कि हमारी दृष्टि परमेश्वर की शांति से दूर हो जाए और परमेश्वर के प्रेम तथा उसकी स्वीकार्यता के प्रति हममें अविश्वास व चिन्ता पैदा हो। परमेश्वर के समक्ष हमारी स्वीकार्यता तथा हमारे प्रति उसके अनन्त प्रेम के बारे में शैतान जब हमारे भीतर संदेह पैदा करके अपने झूठ-फरेब पर विश्वास कराने में सफल होगा तब हम अपनी सान्त्वनापूर्ण, विश्रामपूर्ण तथा संतुलनपूर्ण शांति को खोने लगेंगे।

“इनके अतिरिक्त विश्वास की ढाल लिए रहो जिससे तुम उस दुष्ट के समस्त अग्नि-वाणों को बुझा सको” (इफि0 6:16)। सम्पूर्ण बाइबेलीय विवरण बारम्बार ईश्वरीय भूमिका व पहल को दर्शाता है। हमारी (मनुष्य की) सिर्फ छोटी सी भूमिका को दर्शाया गया है – परमेश्वर पर **विश्वास**। यही क्रम बाइबेल में बारम्बार पढ़ने को मिलता है। इस तथ्य का समर्थन रोमियों 15:13 से भी प्राप्त होता है : “अब आशा का परमेश्वर तुम्हें विश्वास करने में सम्पूर्ण आनन्द और शांति से परिपूर्ण करे, जिससे पवित्र आत्मा की सामर्थ्य से तुम्हारी आशा बढ़ती जाय”। इस पद पर ध्यान देने से यह ज्ञात होता है कि “विश्वास” करने के सिवाय सब कुछ परमेश्वर की ओर से है। अर्थात् हमारा छोटा सा अंश सिर्फ “विश्वास करना” है। अब इफिसियों 6:16 पर ध्यान दें। उपर्युक्त सोलहवें पद में प्राथमिक तौर से पौलुस यह सिखाता है कि जब हम सत्य (मसीह एवं उसके द्वारा क्रूस पर सम्पन्न किए गये कार्य) को अपनाते हैं, परमेश्वर के साथ अपनी सहभागिता (पूर्णरूपेण धर्मी ठहराए गये एवं उसके साथ मेल-मिलाप) को अपनाते हैं तथा इन सच्चाईयों के प्रति पूर्णतः कायल होकर (विश्वासपूर्वक) जीवन आचरण करते हैं, तब शैतान

के समस्त संदेहपूर्ण अग्नि-बाणों को बुझते (नाकाम होते) देखेंगे।

“और उद्धार का टोप तथा आत्मा की तलवार, जो परमेश्वर का वचन है, ले लो” (इफि0 6:17)। स्मरण रहे कि यीशु मसीह ही हमारा उद्धार (विमोचन) है। उसके बगैर उद्धार का कोई बाइबैलीय मायने-मतलब नहीं। इसलिए “उद्धार का टोप” धारण करने का अर्थ प्रभु यीशु मसीह को धारण करना (पहिन लेना) है। शैतान तो हमें रोमियों की पत्री के छठवें अध्याय की इस सच्चाई के ज्ञान एवं विश्वास से दूर रखना चाहता है कि हमारा पुराना मनुष्यत्व (पाप-स्वभाव) मसीह के साथ क्रूसित हो चुका है। शैतान यह चाहता है कि हम अपनी शक्ति में पाप (पुराने मनुष्यत्व) से संघर्षरत रहें, क्योंकि वह जानता है कि हम अपनी शक्ति (प्रयास) से पाप पर विजय नहीं पा सकते। इसके विपरीत जब मसीह की एवजी मृत्यु द्वारा सम्पन्न किए गए ईश्वरीय उद्धार-कार्य तथा मसीह के साथ हमारे पुराने आदम-स्वभाव के सह-क्रूसित होने की सच्चाई पर हम पूरा विश्वास व भरोसा रखना सीखते हैं, तब हम अपने जीवन में पाप पर विजय पाते हैं। क्योंकि ‘मसीह की मृत्यु तथा उसके साथ हमारे पुराने मनुष्यत्व की मृत्यु’ के द्वारा हमारे पाप के स्रोत (शारीरिकता, पाप-स्वभाव) का समाधान हो चुका है। यहाँ चौदहवें से लेकर सत्रहवें पदों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। पवित्र आत्मा सत्य से हमारी कमर कसता (सुसज्जित करता) है, अर्थात् परमेश्वर के जीवित वचन, मसीह में सुस्थापित करता है, परमेश्वर के समक्ष हमारी अवस्था अर्थात् उसके साथ हमारे पूर्ण मेल-मिलाप एवं उससे प्राप्त पूर्ण धार्मिकता को दर्शाता है। इतना ही नहीं, बल्कि पाप, मृत्यु,

शैतान एवं अनन्त दंड से पूर्ण छुटकारे के प्रति पूर्ण निश्चयता प्रदान करता है। तत्पश्चात् परमेश्वर के लिपिबद्ध वचन का इस्तेमाल करते हुए हमें प्रभु यीशु मसीह के अनुग्रह एवं ज्ञान में विकसित करता है (इफि0 4:20-21)।

“प्रत्येक विनती और निवेदन सहित पवित्र आत्मा में निरन्तर प्रार्थना करते रहो। और यह ध्यान रखते हुए सतर्क रहो कि यत्न सहित सब पवित्र लोगों के लिए लगातार प्रार्थना करो” (इफि0 6:18)। “निरन्तर” प्रार्थना करना कैसे सम्भव है? परमेश्वर पर आश्रित रहने एवं पवित्र आत्मा में होने के द्वारा निरन्तर प्रार्थना करते रहना सम्भव है। जब हमारे जीवन पर पवित्र आत्मा का नियंत्रण होगा तब वह हमारे जीवन को परमेश्वर पर सतत् निर्भरता की ओर ले जाएगा अर्थात् निरन्तर प्रार्थनापूर्ण जीवन (प0 थिस्स0 5:17)। इस संदर्भ में प्रभुभक्त जॉन डार्बी के इस कथन पर विचार कीजिए : “प्रार्थना के द्वारा हम परमेश्वर की उपस्थिति के प्रति जागरूक रखे जाते हैं। यह हमारी दुर्बलता की अभिव्यक्ति और हमारे जीवन में परमेश्वर की आवश्यकता का स्वीकरण है”। हाँ, “परमेश्वर के अस्त्र-शस्त्र” के इस अंग (अर्थात् प्रार्थना) का केन्द्र-बिन्दु भी यीशु मसीह ही है।

“और मेरे लिए भी प्रार्थना करो कि बोलते समय मुझे ऐसा प्रबल वचन दिया जाय कि मैं साहस से सुसमाचार के रहस्य को प्रकट कर सकूँ” (इफि0 6:19)। यहाँ पौलुस इफिसुस के विश्वासियों से उसके लिए यह प्रार्थना करने के लिए कहता है कि उसे परमेश्वर की ओर से सुसमाचार प्रचार करते रहने के लिए शब्द

एवं साहस मिलता रहे। स्मरण रहे कि इस पत्री को लिखते समय, पौलुस सुसमाचार प्रचार के कारण ही रोम में कैद था।

“तुखिकुस, जो प्रिय भाई और प्रभु में विश्वासयोग्य सेवक है, तुम्हें मेरी परिस्थिति के विषय में बताएगा कि तुम जान सको कि मैं किस स्थिति में हूँ” (इफि0 6:21)। यहाँ इक्कीसवें पद में (तुखिकुस नामक) जिस व्यक्ति का जिक्र किया गया है, सम्भवतः उसी ने इस पत्री को इफिसुस की कलीसिया तक पहुंचाया। तुखिकुस ने पौलुस की सुसमाचार प्रचार यात्राओं में उसके साथ यात्रा की थी और नव-स्थापित कलीसियाओं में वचन की शिक्षा देने में उसकी सेवा-सहायता की थी।

“परमेश्वर पिता और प्रभु यीशु मसीह की ओर से भाइयों को शांति और विश्वास सहित प्रेम मिले” (इफि0 6:23)। सच्ची शांति, प्रेम एवं विश्वास केवल परम प्रधान परमेश्वर से ही मिलता है। जैसे-जैसे पवित्र आत्मा के अधीन हम जीवन व्यतीत करना सीखते हैं, वैसे-वैसे सच्ची शांति, प्रेम व विश्वास में भी बढ़ते जाते हैं।



हमारे अन्य प्रकाशन

1. उत्पत्ति और उद्धार की कहानी
2. सुदृढ़ आधार
3. परमेश्वर कृत उद्धार
4. प्रेरितों के काम
5. रोमियों
6. आत्मिक जन्म
7. वह मुझमें और मैं उसमें
8. आध्यात्मिक विकास के सिद्धान्त
9. प्रभु पर दृष्टि
10. उद्धार का अभिप्राय
11. पवित्र शास्त्र बाइबल की भविष्यवाणियाँ